अक्तूबर 1972
मूल्य : 30 पैसे

न्याय संगत विकास

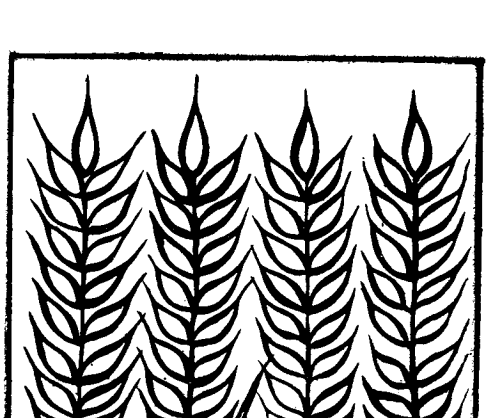

सत्रहवां वार्षिक अंक

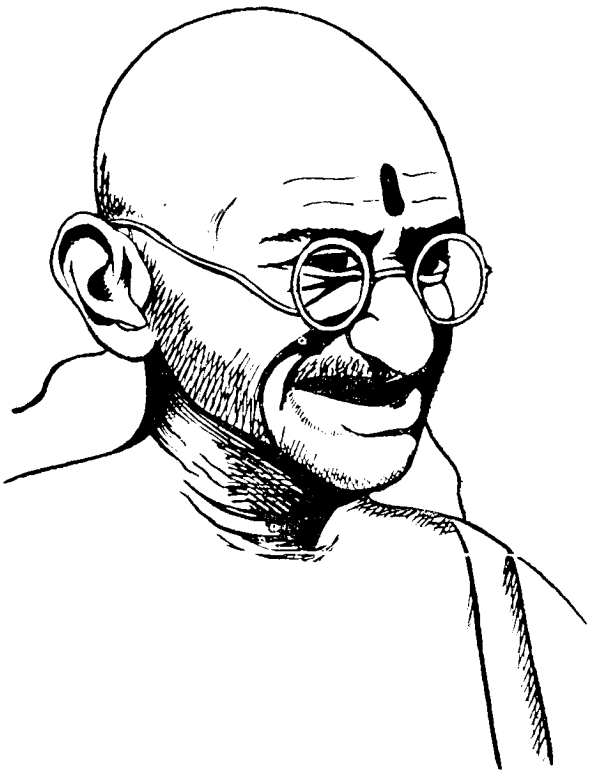

** सामाजिक न्याय क्यों जरूरी ? **

यदि मैं प्रत्येक व्यक्ति को न्यायानुसार उचित वेतन दूं तो मेरे पास फालतू धन इकट्ठा नहीं हो पाएगा और मैं ऐशो-आराम पर पैसा बरबाद नहीं कर पाऊंगा तथा संसार में गरीबी को बढ़ावा नहीं मिल पाएगा। जो कर्मचारी मुझसे उचित वेतन पाएगा वह अपने अधीनस्थों से भी न्यायपूर्ण व्यवहार करेगा। इस प्रकार न्याय का दरिया सूखेगा नहीं, वरन् ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेगा, शक्ति पकड़ता जाएगा और इस प्रकार न्याय की भावना वाला राष्ट्र सुखी और समृद्ध होगा।

इस प्रकार हमें पता लगता है कि अर्थशास्त्रियों का यह सोचना गलत है कि राष्ट्र के लिए प्रतियोगिता अच्छी है। प्रतियोगिता से केवल खरीदार ही अन्यायपूर्ण तरीकों से कम दरों पर मजदूर प्राप्त कर सकता है और नतीजा यह होता है कि अमीर अधिक अमीर तथा गरीब अधिक गरीब होता जाता है। आगे चलकर देश नाश की ओर चला जाता है। एक कर्मचारी को अपनी योग्यतानुसार न्यायिक वेतन मिलना चाहिए। इस प्रकार भी एक प्रतियोगिता आएगी पर इससे लोग अधिक सुखी और कार्यकुशल होंगे। सरकारी सेवाओं में पदों के अनुसार ही वेतन नियत करने का भी यही राज है। किसी पद के लिए आए प्रार्थी को कम वेतन पर काम करने के लिए तैयार नहीं होना पड़ता, बल्कि उसे यह सिद्ध करना होता है कि वह अन्य प्रतियोगियों से अधिक योग्य है। परन्तु व्यापार और उत्पादन में अन्य किस्म की प्रतियोगिता है, जिससे धोखेबाजी, चोरी आदि पनपती हैं। उत्पादन घटिया होता है। उत्पादक, श्रमिक और उपभोक्ता सभी केवल अपने हितों का ध्यान रखते हैं। इससे लोगों के आपसी सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। श्रमिक भूखों मरते हैं और हड़ताल करते हैं। उत्पादक बदमाशी करते हैं और उपभोक्ता भी अपने व्यवहार के औचित्य का कोई ध्यान नहीं रखते। **एक अन्याय से दूसरे अन्याय पनपते हैं, अन्त में मालिक, कर्मचारी और ग्राहक सभी असन्तुष्ट होते हैं तथा सभी का पतन हो जाता है। लोगों का धन उनके लिए अभिशाप हो जाता है।**

सच्चा अर्थशास्त्र तो न्याय का अर्थशास्त्र है। लोग न्याय और सही काम करना सीखकर ही सुखी होंगे। लोगों को सही या गलत सभी तरीकों से अमीर होना सिखाना उनके प्रति एक भारी कुसेवा होगी।

जो अर्थशास्त्र धन की पूजा करना, और जबरदस्तों को कमजोरों का शोषण करके धन इकट्ठा करने योग्य बनाता है वह झूठा और निराशाजनक विज्ञान है; इससे मौत ही दीखती है। दूसरी ओर सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय के लिए होता है, यह सबसे कमजोर व्यक्ति सहित सभी को लाभ पहुंचाता है, तथा शिष्ट जीवन के लिए यह अनिवार्य है।"

गांधीजी

ग्राम स्वराज : गांधीजी की अवधारणा *

त्रिलोकी नाथ

मिलजुल कर साथ रहने की प्रवृत्ति एक सहज मानवीय प्रवृत्ति है। जब साथ रहने वाले सभी लोग आपसी सहयोग करें और उनमें अपना राज्य स्वयं ही मेलजोल से चलाने की उत्कण्ठा और अनुभूति हो तो लोकतन्त्र का निर्माण होता है। इसी निर्माण की छिपी हुई शक्ति को अभिव्यक्त करने के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम तैयार किया गया है। यह भी "कुरुक्षेत्र" का नया युद्ध है। इस युद्ध में भाई-भाई लड़ने के बजाए कन्धे से कन्धा मिला कर अपनी उन्नति के लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे।

शेष आवरण पृष्ठ 3 पर]

मज़दूर मंज़िल

कुरुक्षेत्र

वर्ष 17 आश्विन 1894 अंक 12

इस अंक में

इस अंक में	पृष्ठ
सहकारी बस्तियों की नई योजना **वी० वी गिरि**	2
ग्रामीण विकास में नई दिशाएं **प्रोफेसर शेरसिंह**	5
ग्रामीण रोजगार की क्रैश योजना **एस० एम० मुर्शिद**	7
कार्यक्रम, आशाएं और उपलब्धियां **एम० ए० कुरैशी**	10
सामुदायिक विकास के बदलते रंग ढंग **यू० सी० घिलड्याल**	15
लोकतन्त्र की अंधेरी उजली गलियां **क्षितीश**	19
समाजीकरण में सहकारिता को धुरी बनाएं **भेंटकर्ता शक्ति त्रिवेदी**	24
तम के कौरव से लड़ते हैं (कविता) **तारादत्त निर्विरोध**	26
रेल कर्मचारियों में सहकारिता आन्दोलन **रामचन्द्र तिवारी**	27
साक्षरता और कृषि विकास **गुलाबचन्द जायसवाल**	31
परिवार नियोजन कार्यक्रम **विपनचन्द्र उप्रेती**	35
पाठकों की राय **ज्ञानेन्द्र प्रसाद जैन**	39
साहित्य समीक्षा **सुरेन्द्र प्रसाद अग्रवाल**	40
कृषि विकास का लाभ जन-जन तक पहुंचे **रमेश दत्त शर्मा**	41

●

दूरभाष 382406

एक प्रति 30 पैसे : वार्षिक चन्दा 3.00 रुपए

सम्पादक : पी० निवासन

स० सम्पादक : महेन्द्रपाल सिंह

उपसम्पादक : त्रिलोकी नाथ

आवरण पृष्ठ : बलराम मण्डल

न्याय संगत विकास के पथ पर

हमारे योजनाबद्ध विकास में शुरू से लेकर अब तक अनेक दौर आए हैं और इन दौरों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय जीवन के अनेक क्षेत्रों में प्रगति का जो चक्र चला उससे एक ओर प्रकाश की किरणें फूटीं तो दूसरी ओर उनके पीछे अन्धकार की काली छाया भी रही। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि जहां देश में अन्न के मामले में आत्मनिर्भरता, उद्योग संस्थानों में उत्पादन के लगे अम्बार, स्कूलों-कालेजों की बढ़ती संख्या, चारों ओर सड़कों का बिछा जाल, गांव-गांव और नगर-नगर में बिजली की रोशनी से जगमगाहट, जगह-जगह गगनचुम्बी अट्टालिकाएं, हर गली कूचे में रेडियो की मधुर ध्वनि तथा प्लेग, मलेरिया आदि रोगों से छुटकारा हमारे विकास प्रयासों का परिणाम है वहां समाज में रोष, क्षोभ, बेचैनी, हिंसा, तोड़-फोड़ आदि कुकृत्य इस बात के सूचक हैं कि हमारे विकास प्रयासों में धन, जन और संसाधनों का जो विनयोग हुआ उनका लाभ सबको न्यायानुसार नहीं मिला। जो विकास फीलपांव की तरह स्थूल-काय हो उसे स्वस्थ विकास नहीं कहा जा सकता और न उससे राष्ट्र की काया स्वस्थ, सबल और सशक्त बन सकती है।

यह एक तथ्य है कि हर वस्तु में विकास की शक्ति निहित होती है और उसकी अपनी एक विशिष्ट प्रकृति होती है। बीज तभी फलता-फूलता है जब उसे अपनी प्रकृति के अनुसार उपयुक्त भूमि, वातावरण, परिस्थिति और जलवायु मिले। भारत की आत्मा और प्रकृति में न्याय की भावना सदैव ही ओतप्रोत रही है जबकि त्याग, बलिदान तथा परोपकार उसके जीवन के आदर्श रहे हैं। महात्मा गांधी भारत की इस आत्मा को अच्छी तरह पहचानते थे और देश की मूल प्रकृति का सहारा लेकर ही भारत के समुदाय का विकास करना चाहते थे। जब हमारी आजादी की लड़ाई चल रही थी और समाज की नवरचना के सपने देखे जा रहे थे तब उन्होंने कहा था कि "जो अर्थशास्त्र धन की पूजा करना और जबरदस्तों को कमजोरों का शोषण करके धन इकट्ठा करना सिखाता है वह झूठा अर्थशास्त्र है और उससे मौत ही नजर आएगी और वह अर्थशास्त्र सच्चा अर्थशास्त्र है जो सामाजिक न्याय सिखाता है और कमजोर से कमजोर को भी लाभ पहुंचाता है।" परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विकास के आयोजनों का जो सिलसिला शुरू हुआ उसमें महात्मा जी की इस बात को भुला दिया गया और अतिपार्थिव दृष्टिकोण अपनाया गया जिससे नैतिकता के बन्धन ढीले पड़ गए। नतीजा यह हुआ कि विकास प्रयासों में जो साधन-सुविधाएं जुटाई गईं उनकी छीनाझपटी में बड़े-बड़े हाथ मार गए और छोटे तबकों में कुछ को मिला तो कुछ हाथ मलते रह गए। समाज में बेचैनी फैली और स्थिति की गम्भीरता को देखकर जब हमारे कर्णधारों का माथा ठनका तो पिछले कुछ दिनों से सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा की बात भी चल पड़ी है और बैंक राष्ट्रीयकरण, जोत-

[शेष पृष्ठ 4 पर]

सहकारी बस्तियों की नई योजना

[राष्ट्रपति श्री गिरि ने सहकारी बस्तियों की एक योजना तैयार की है। योजना के अनुसार 12 सौ एकड़ का एक खण्ड होगा। इस खण्ड में दो सौ परिवार रह सकेंगे और इसे एक इकाई माना जाएगा। प्रत्येक परिवार के पास 5 एकड़ जमीन होगी। आवास, स्कूल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, खेल के मैदान सड़क आदि के लिए दो सौ एकड़ जमीन सुरक्षित रखी जाएगी। इस योजना से रोजगार के काफी अवसर उपलब्ध होंगे और यदि योजना को ठीक ढंग से अमल में लाया जाए तो इससे असली सहकारी भारत की बुनियाद पड़ सकेगी। —सम्पादक]

वी० वी० गिरि

बेरोजगारी पर भगवती समिति की अन्तरिम रिपोर्ट में कई अल्पावधि उपाय सुझाए गए हैं और आशा व्यक्त की गई है कि इन उपायों से रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे तथा साथ ही इनका कई गुना प्रभाव भी पड़ेगा। समिति द्वारा की गई सिफारिशों में से एक सिफारिश यह है कि विकास के सभी पहलुओं पर विचार करने की दृष्टि से प्रायोगिक परियोजनाएं चुने हुए जिलों में छोटे सुगठित क्षेत्रों में शुरू की जाएं क्योंकि ये उस क्षेत्र में काम करने के लिए तैयार सभी व्यक्तियों को उत्तरोत्तर रोजगार उपलब्ध करने में समर्थ हो सकेंगी। आपको ज्ञात होगा कि यह वही कार्यक्रम है जिस पर मैं काफी समय से जोर दे रहा हूं।

पहली अवस्था

ये प्रायोगिक परियोजनाएं संगठित इकाइयों के रूप में होंगी जो मूलरूप में आत्मनिर्भर होंगी और आगे चलकर आर्थिक रूप से भी स्वावलम्बित हो जाएंगी। यह योजना केन्द्र द्वारा निर्मित होगी और इसे केन्द्र से सहायता प्राप्त होगी पर इसका क्रियान्वयन राज्यों द्वारा ही किया जाएगा। सरकार केवल देखभाल का काम करेगी और इस बात का ध्यान रखेगी कि आर्थिक सहायता और अन्य प्रकार की सहायता का ठीक ठीक इस्तेमाल किया जाए और इसका हिसाब किताब भी ठीक से रखा जाए। कुछ मूलभूत जिम्मेदारियां भी सरकार की होंगी, जैसे—स्वास्थ्य, संचार, शिक्षा आदि।

1200 एकड़ क्षेत्र का एक संगठित खण्ड, जिसमें 200 परिवार रह सकें, एक इकाई का उपयुक्त आकार रहेगा और इस प्रकार प्रत्येक परिवार के पास लगभग 5 एकड़ जमीन होगी। आवास तथा स्कूल, प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र, खेल के मैदान और सड़क आदि सामान्य सुविधाओं के लिए 200 एकड़ जमीन सुरक्षित रखी जाएगी। आरम्भ में राज्यों में ऐसी भूमि को चुन लिया जाए जिस पर काफी भाग में अच्छे प्रकार से खेती की जा सके। अच्छा हो, यदि इस चुने हुए क्षेत्र में भूमि को सुधारने की आवश्यकता न पड़े और सिंचाई की सुविधाओं की सम्भावना हो। जहां सिंचाई की सम्भावना न हो वहां इस योजना को बारानी खेती की योजना के रूप में तैयार करना होगा। पहली अवस्था में भूमि को सुधारने की समस्याओं, किसानों के लिए आवास, सिंचाई की सुविधाओं की व्यवस्था, जहां सम्भव हो वहां बिजली की व्यवस्था और आरम्भिक रूप में सड़कों के निर्माण की ओर ध्यान देना होगा। यदि भूमि के सुधार के लिए आधुनिक उपकरणों और धन की जरूरत पड़े तो यह बुनियादी जिम्मेदारी भी सरकार को उठानी पड़ेगी और यह योजना का अंग होगी। फिर भी ऐसे क्षेत्रों का चुनाव

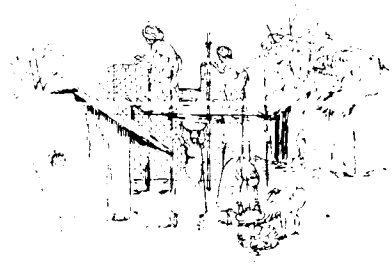

करना होगा जहां भूमि के सुधारने पर कम खर्च होने का अनुमान हो। पूरे ढांचे पर होने वाले खर्च की व्यवस्था पूरे तौर पर सरकार को ही करनी होगी। इस सारे कार्य के लिए श्रमिकों की व्यवस्था मुख्य रूप से बस्ती बनाने वालों को ही करनी होगी और उन्हें पहली अवस्था पूरी होने तक मजदूरी दी जाएगी। आशा है कि परियोजना शुरू होने के एक वर्ष बाद तक आवास, आरम्भिक सड़कों, स्वास्थ्य सुविधाओं तथा भूमि के सुधारने से सम्बन्धित कार्य पूरे हो जाएंगे। यदि प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र थोड़ी ही दूरी पर स्थित हों तो नई स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

सबसे पहली फसल के लिए आवश्यक बीज, उर्वरक, कीटनाशक और उपकरण (बैल भी सम्मिलित हैं) सरकार को ही उपलब्ध कराने होंगे, लेकिन ये किसान परिवार को ऐसे ऋणों के रूप में दिए जा सकते हैं जिन्हें शुरू के पांच वर्षों के बाद दस या बीस साल में आसान किस्तों में अदा किए जाए। आशा है कि सरकार द्वारा भूमि के सुधारने, आवास

व्यवस्था और कृषि कार्यों के लिए भूमि आदि के रूप में सहायता लेकर कृषि अर्थव्यवस्था का निर्माण करने की यह पहली अवस्था लगभग पांच वर्ष में पूरी हो जाएगी। जैसे जैसे पहली अवस्था में सफलता प्राप्त हो, हम कृषि उपकरणों की मरम्मत, डेयरी फार्मिंग, मुर्गीपालन आदि कम लागत से होने वाले कार्य भी शुरू कर सकते हैं।

विविधीकरण

पहले पांच साल के भीतर ही कृषि आधार तैयार हो जाएगा और उत्पादन होने लगेगा, तथा यहीं से दूसरी अवस्था शुरू हो जाएगी। तब हम कृषि पर आधारित अन्य उद्योगों के शुरू करने की दिशा में सोच सकते हैं। चूंकि बस्ती की सारी गतिविधियां स्थानीय सरकारी तन्त्र की देखरेख और निर्देशन में होंगी, अतः आवश्यक होने पर गैर सरकारी साधनों से भी सहायता ली जा सकती है। इस समय तक बस्ती के लिए बनाया गया प्रशासनिक ढांचा भी अच्छी तरह जम जाएगा।

नए आयाम

परियोजना की तीसरी अवस्था में बस्ती शुरू होने के दस वर्ष पूरे होने तक विकसित की गई कार्यकुशलता और समुदाय में हुए विकास की गति के आधार पर रोजगार के लिए नए आयाम ढूंढने की ओर सक्रिय प्रयत्न करने होंगे। इसके लिए आसपास स्थित बड़े उद्योगों के लिए सहायक सामग्री के उत्पादन की सुविधाएं जुटाने के काम को ही मुख्य कार्यक्षेत्र बनाया जा सकता है। इनमें से कुछ सामग्री आधुनिक किस्म की हो सकती है और उसके लिए लघु उद्योगों की स्थापना

को सरकार का कार्य समझती है, अतः प्रारम्भिक प्रयत्न सरकार की ओर से ही होने चाहिए। तो भी, यह आवश्यक नहीं है कि इस काम के लिए अलग से प्रशासनिक इकाई स्थापित की जाए क्योंकि खण्ड स्तर पर मौजूद स्टाफ से ही इस कार्यक्रम को चलाया जा सकता है।

समुदाय के भीतर ही एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना करनी होगी जो समुदाय के हितों, विशेषकर उच्च जीवन स्तर के विकास का पूरा ध्यान रखे। समुदाय की व्यवस्था परिषद की स्थापना होनी चाहिए और ऐसा हो जाने के बाद प्रशासनिक तन्त्र तकनीकी सलाहकारों के रूप में काम कर सकेगा।

जिलाध्यक्ष को अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर परियोजनाओं के आयोजन एवं क्रियान्वयन में शुरू से ही सक्रिय सहयोग

योजना का मुख्य सिद्धान्त है आर्थिक कार्यों के साधनों का सामूहिक स्वामित्व, विशेषकर भूमि का। जहां उत्तराधिकार के उद्देश्य के लिए हर परिवार को पांच एकड़ भूमि का स्वामी माना जा सकता है, वहां यह भी आशा की जाएगी कि यह भूमि हस्तान्तरणीय नहीं होगी और उसकी व्यवस्था हर प्रकार से पूरी बस्ती के अंश (भाग) के रूप में ही होगी तथा व्यक्तिगत हित जनसामान्य के हित और उन्नति से सम्बद्ध होंगे।

कृषि की वैज्ञानिक प्रणालियां और आधुनिक उपकरण आदि बिलकुल शुरू से ही अपनाए जा सकते हैं। इनसे किसानों की कार्यक्षमता तो बढ़ेगी पर इनसे श्रम की बचत नहीं होनी चाहिए। शक्ति चालित पम्प, मैकेनिकल हैरो, कीटनाशक छिड़कने के लिए पावर स्प्रेअर, सुधरी किस्म के हल आदि इस्तेमाल किए जाने चाहिए। अतः दूसरी अवस्था में इन उपकरणों की मरम्मत और रखरखाव के बारे में सोचना होगा। दो या तीन बस्तियां मिलकर आसपास ही एक वर्कशाप स्थापित कर सकती हैं जिसमें मैकेनिकल हैरो आदि साधारण उपकरण तैयार किए जा सकते हैं। वर्कशाप में शक्ति चालित मशीनों की मरम्मत की सुविधाएं भी उपलब्ध की जा सकती हैं। इन सब कामों के लिए अर्थ की व्यवस्था समुदाय को अपने संसाधनों से ही करनी होगी या की आवश्यकता भी पड़ सकती है।

योजना का एक आवश्यक अंग होगा हर कृषि इकाई के भीतर और उसके आसपास काम की सभी जरूरतों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम। यह कार्यक्रम आसपास स्थित दो या तीन कृषि इकाइयों के लिए संयुक्त रूप से एक ही स्थान पर भी चलाया जा सकता है। इस कार्यक्रम की व्यवस्था करने के लिए बहूद्देश्यीय विद्यालय खोले जा सकते हैं, जिनमें मुख्य विषय खेती-बाड़ी होगा और लोगों के रुझान तथा कौशल के विकास पर भी पूरा जोर दिया जाएगा।

ऋण, विपणन आदि के लिए सहायक संस्थाएं भी उपलब्ध कराई जाएंगी।

चूंकि योजना भूमि को विकसित करके कृषि योग्य बनाने और वहां रहने वालों के लिए जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं तथा कृषि आदानों की पूर्ति देना होगा।

योजना का मुख्य उद्देश्य है आर्थिक कार्यों के साधनों का सामूहिक स्वामित्व, विशेषकर भूमि का। जहां उत्तराधिकार के लिए हर परिवार को पांच एकड़ भूमि का स्वामी माना जा सकता है, वहां यह आशा की जाएगी कि यह भूमि हस्तान्तरणीय नहीं होगी और उसकी व्यवस्था हर प्रकार से पूरी बस्ती के एक अंश (भाग) के रूप में ही होगी तथा व्यक्तिगत हित जन सामान्य के हित और उन्नति से सम्बद्ध होंगे।

बस्ती बनाने वालों को चाहिए कि वे अपनी संस्था बनाकर पंजीकृत कराएं और "प्रशासनिक परिषद" बनाकर उसके नीचे रहकर काम करें।

यह भी आवश्यक है कि वैयक्तिक स्वामित्व प्रदान करने और अधिक से अधिक प्रोत्साहन देने के साथ ही स्वा-

मित्व के हस्तान्तरण के अधिकार पूरी तरह समाप्त कर दिए जाएं। अतः जिसे भूमि दी जाए उस पर इस प्रकार का प्रतिबन्ध हो कि वह उस भूमि का हस्तान्तरण न कर सके, हां उसे उत्तराधिकार का हक होना चाहिए। जिस परिवार को भूमि दी जाएगी उसे भूमि का बंटवारा करने की आज्ञा भी नहीं दी जाएगी।

(1) जैसे जैसे योजना सफल होती जाएगी वैसे वैसे ही देश के हरेक विकास खण्ड में, जो परिवार चाहेंगे उनमें से चुने हुए परिवारों को कृषि योग्य भूमि दी जाएगी और इससे भारी मात्रा में रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे;

(2) इससे सामूहिक मिलकियत को बढ़ावा मिलेगा और पूरी भूमि को एक कृषि इकाई मानकर बड़े पैमाने पर खेती करने के लाभ भी लिए जा सकते हैं;

(3) इससे स्वतः वृद्धि का एक सिलसिला चालू हो जाएगा और कुछ समय बाद कृषि के आधार पर तरह तरह की आर्थिक गतिविधियां शुरू हो जाएंगी;

(4) लाभदायक रोजगार उपलब्ध करने और सहकारी रचनात्मक प्रयत्नों से रहने के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए यह परियोजना एक उदाहरण होगी; और

(5) यह योजना समुदाय के सभी मामलों की व्यवस्था (आर्थिक मामलों सहित) करने के लिए समुदाय में ही उचित नेतृत्व का विकास कर सकेगी।

न्याय संगत विकास के पथ पर............ [पृष्ठ 1 का शेषांश]

सीमानिर्धारण तथा छोटे किसानों, खेतिहर मजदूरों और ग्रामीण बेरोजगारों के लिए विशेष योजनाओं के रूप में इस दिशा में कुछ सक्रिय कदम भी उठाए गए हैं। अपनी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा में भी ऐसे ही उपायों पर जोर दिया जा रहा है।

पर हमारे समाज की स्थिति बड़ी विषम है। जहां एक ओर हमारे सामाजिक क्षेत्र में अभी भी जातपांत, छुआछूत, ऊंच-नीच, अन्धविश्वास, दहेज आदि कुरीतियां विद्यमान हैं वहां दूसरी ओर आर्थिक क्षेत्र में घोर असमानता है और निहित स्वार्थी तत्व देश के अर्थचक्र पर मजबूती से अपना पंजा जमाए हुए हैं। आज की मंहगाई, जमाखोरी, बेरोजगारी और अभाव उन्हीं की देन हैं। कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि की असन्तोषजनक दर का कारण भी ये ही तत्व हैं। ऐसी स्थिति में सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा के हमारे ये प्रयास कहां तक सफल होंगे यह भविष्य बताएगा।

इन प्रयासों की उपादेयता से तो इनकार नहीं किया जा सकता पर यह एक वास्तविक तथ्य है कि हमारे समाज का नवनिर्माण न्याय की आधार शिला पर तभी खड़ा हो सकता है जब हम अपनी असली आत्मा को टटोलें और उन गुणों को अपने में फिर से आत्मसात करें जिनके कारण किसी समय हमारा भारत "सोने की चिड़िया" कहलाता था। जमाखोरी, नफाखोरी और शोषण आदि धनार्जन प्रवृत्तियां हमारी प्रकृति के विरुद्ध है और हमने अपने देश में समाजवाद की स्थापना का जो संकल्प किया है उसको अमल में लाने के लिए जरूरी है कि इन प्रवृत्तियों को सख्ती से दबाया जाए। दूसरी बात यह कि इसके लिए हमें अपनी आबालवृद्ध जनताके चरित्र का नए सिरे से निर्माण करना होगा। शिक्षा इस चरित्र-निर्माण में अपनी प्रमुख भूमिका अदा कर सकती है। परन्तु खेद है कि आज स्वतन्त्रता प्राप्ति के 25 वर्ष बाद भी हमारी शिक्षा-प्रणाली का वही रूप है जो ब्रिटिश शासन काल में था और जिसे मैकाले ने भारत में ब्रिटिश सत्ता को बद्धमूल करने के लिए रचा था। हमें शिक्षा प्रणाली के इस रूप को बदलना होगा और ऐसी शिक्षा प्रणाली बनानी होगी जिससे हमारे छात्रों में सच्चरित्र जीवन का निर्माण हो, उनमें श्रम के प्रति गौरव की भावना पैदा हो और उन्हें स्कूल-कालेज छोड़ने के बाद नौकरी की तलाश में दर-दर न भटकना पड़े। उनमें शिक्षा के द्वारा ऐसे भाव भरे जाएं कि वे जीवन में दलितों, पीड़ितों तथा दीन-हीनों को ऊपर उठाने का ध्येय लेकर चलें और उनमें न्याय की भावना पनपे। यह खुशी की बात है कि शिक्षा मन्त्री ने इसी दृष्टिकोण को लेकर एक नई शिक्षा योजना तैयार की है और आशा है कि इससे कुछ बात बन पड़ेगी।

हमारा देश बहुत प्राचीन है। यहां की अपनी संस्कृति है, अपनी सभ्यता है और अपनी परम्पराएं हैं। ये सब इतनी बद्धमूल हैं कि इनको सहसा उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं है। नए पुराने का संघर्ष चालू है और परिवर्तन का चक्र भी चल रहा है। पर यहां भी हमें जरा विवेक से काम लेने की जरूरत है। नए और पुराने दोनों में से वही ग्रहण करना होगा जो ग्राह्य हो। अन्धानुकरण से हम भटक जाएंगे और कुछ हाथ न लगेगा। अतः हमें अपने नवनिर्माण के लिए आधुनिक भौतिक विकास के साथ प्राचीन नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का समन्वय करना होगा। तभी हम समग्र भारत के सर्वांगीण विकास का पथ प्रशस्त कर सकते हैं और समाज में सच्ची न्याय संगत सामुदायिक भावनाओं को जन्म दे सकते हैं।

महेन्द्रपाल सिंह

ग्रामीण विकास में नई दिशाएं

प्रोफेसर शेरसिंह

हर वर्ष 2 अक्तूबर को गांधी जी की जन्मतिथि मनाई जाती है और इस दिन अनायास ही लोगों के विचारों का रुख रचनात्मक कार्यों की ओर मुड़ जाता है। गांधी जी लोगों को हमेशा ग्रामीण जनता के प्रति उनकी जिम्मेदारियों के लिए सचेत करते रहते थे। स्वतन्त्रता संग्राम में भी गांधी जी गांवों में पुनर्निर्माण कार्यों द्वारा लोगों का सहयोग प्राप्त करना चाहते थे और इस कार्यक्रम में खादी भी सम्मिलित थी। उनका विश्वास था कि खादी से देश में क्रान्ति आएगी और गांवों में बेकार लोगों को रोजगार मिलेगा। पिछले वर्षों की तरह ही इस वर्ष भी हम राष्ट्रपिता की जन्मतिथि से शुरू होने वाले सप्ताह में सामुदायिक विकास सप्ताह मना रहे हैं। 20 वर्ष पहले इसी दिन शुरू किया गया सामुदायिक विकास कार्यक्रम इस समय पूरे देश भर में फैल चुका है और पंचायती राज प्रणाली, जिसमें विभिन्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधि शामिल हैं, भी काफी फैल चुकी है।

बुनियादी समस्या

देश में पिछले वर्षों में कृषि के मामले में काफी प्रगति हुई है, पर फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में भारी संख्या में बेरोजगारों की समस्या देश के सामने है। इसका मुख्य कारण यह है कि देश की जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि पर निर्भर करता है। इस असन्तुलन को ठीक करने के लिए कृषि का आधार अधिक व्यापक बनाना होगा और इसके लिए समेकित क्षेत्र विकास की दिशा में सघन प्रयास करने होंगे। इस समय ग्रामीण पुनर्निर्माण के सारे प्रयास इसी दिशा में किए जा रहे हैं।

क्षेत्र विकास के ढांचे में बहुत से कार्य आते हैं जिन्हें समेकित ढंग से करके बेकार लोगों को काम तो मिलेगा ही, साथ में उस क्षेत्र की वृद्धि-क्षमता भी बढ़ेगी। इन कामों में लघु सिंचाई, भूमि संरक्षण, डेयरी और पशुपालन, वनरोपण, गोदाम और भण्डारण, कृषि उद्योगों सहित लघु उद्योग, सड़कें और कमजोर तबकों के लिए विशेष कार्यक्रम आते हैं।

चौथी योजना में विकास कार्यों के लिए केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित राशि लगभग 3,600 करोड़ रुपये से 3,900 करोड़ रुपये के बीच है। इन रोजगार प्रधान कार्यक्रमों पर योजना के अन्तिम वर्ष में लगभग 1,075 करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान है।

जन सहयोग

ग्रामीण विकास के प्रयासों से अधिकाधिक लाभ पाने के लिए जनता का सहयोग प्राप्त करना जरूरी है। उन्हें नई तकनीकें सीखकर विकास के विभिन्न क्षेत्रों में अपनानी हैं। नई कृषि नीति का उद्देश्य प्रमुख फसलों के विदेशी और संकर बीजों की अतिरिक्त उत्पादन क्षमता का पूरा-पूरा लाभ उठाना है। इन किस्मों को उगाने के लिए काफी ज्यादा मात्रा में उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग करना होता है। इसके लिए ग्रामीण समुदाय को अपनी उत्पादन योजना तैयार करनी होगी और इस बात का पूरा ध्यान रखना होगा कि उपलब्ध आदान ठीक से बांटे जाएं और उनका उचित प्रयोग हो, उपलब्ध सिंचाई सुविधाओं का अधिकाधिक लाभ उठाया जाए तथा नई क्रियाओं और आधुनिक तरीकों को शुरू करने के लिए उचित वातावरण और स्थिति तैयार हो जाए। इसी तरह परिवार नियोजन कार्यक्रम भी जनता के पूरे सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकता। जनहित कार्यक्रमों में भी आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े लोगों के हितों की रक्षार्थ तथा उनकी प्रगति में तेजी लाने के लिए विशेष कार्यवाही की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में कुछ बुनियादी जरूरतों की ओर तुरन्त ध्यान देना होगा। ये जरूरतें हैं 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए प्राथमिक (बुनियादी) शिक्षा, आवश्यक स्वास्थ्य सुविधाएं, ग्रामीण जल सप्लाई, भूमिहीन श्रमिकों के लिए आवासीय भूमि, ग्रामीण सड़कें और ग्रामीण विद्युतीकरण।

दो अभिकरण

विकास प्रयासों में लोगों का सहयोग प्राप्त करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक विकास और पंचायती राज का एक ढांचा है। ग्रामीण विकास प्रशासन की यह नई प्रणाली पिछले 20 वर्षों में ही विकसित हुई है। इस ढांचे में एक ओर तो खण्डों में राष्ट्रीय प्रसार तन्त्र है तथा दूसरी ओर पंचायती राज संस्थाएं हैं जिनमें लोगों के प्रतिनिधि ही हैं। इस प्रकार ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए अधिकारी और गैर-अधिकारी सभी लगे हैं। राष्ट्रीय प्रसार सेवा विशेषज्ञों की सेवा उपलब्ध कराती है और इस बात का ध्यान रखती है कि उन्नत प्रणालियों को अपनाने के लिए आवश्यक आदान उपलब्ध होते रहें। इसमें लगभग 100 गांवों का एक खण्ड

होता है और प्रत्येक खण्ड के लिए एक दल होता है जिसमें 8 प्रसार अधिकारी, 10 ग्रामसेवक और 2 ग्रामसेविकाएं होती हैं। इस विकास दल का नेता खण्ड विकास अधिकारी होता है। इस समय 4,893 खण्ड हैं और इनमें कार्यक्रम 5-5 वर्ष की अवधि की दो अवस्थाओं में लागू किया जाता है। पहली अवस्था के लिए 12 लाख रुपये का प्रावधान है तथा दूसरी अवस्था के लिए 5 लाख रुपये का।

पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत कुल 501 करोड़ रुपये व्यय किए गए जबकि चौथी पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम के लिए 97.23 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है। पर खण्ड के मुख्य बजट से कृषि, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि विकास विभागों के कार्यक्रमों से भी सहयोग मिलता है। इसके अलावा, पंचायती राज संस्थाएं भी संसाधन जुटाती हैं।

विशेष कार्यक्रम

सामुदायिक विकास कार्यक्रम को मुख्य रूप से यह देखना है कि उन्नत कृषि और अन्य विकास कार्यों से ग्रामीण जनता को समान लाभ पहुंचे। ग्रामीण क्षेत्रों में कल्याण और सामाजिक सेवाओं की मांग पहले ही बहुत बढ़ गई है। ग्रामीण जनता के कमजोर और गरीब तबकों के विकास की दृष्टि से चुने हुए क्षेत्रों में कई विशेष कार्यक्रम हाथ में लिए गए हैं। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य गरीब वर्गों के लिए रोजगार और आय के अवसर पैदा करना तथा गरीब किसानों की उत्पादन क्षमता बढ़ाना है।

छोटे किसानों, सीमान्त कृषकों और कृषि श्रमिकों के हितों की देखभाल रखने के लिए जिला स्तर पर विशेष एजेन्सियां खोली गई हैं। 87 चालू परियोजनाओं में इन एजेन्सियों के लिए चौथी योजना के अधीन 106 करोड़ रुपये की केन्द्रीय सहायता मिली है। एक अन्य योजना—"ग्रामीण रोजगार की क्रैश योजना" देश के सभी जिलों में शुरू की गई है। हर परियोजना स्थानीय विकास योजनाओं की जरूरतों के अनुसार टिकाऊ किस्म की परिसम्पत्तियों का निर्माण करने के लिए बेरोजगारों को काम उपलब्ध कराती है। हाल में आई नवीनतम रिपोर्टों के अनुसार इस योजना ने अपने पहले वर्ष, 1971-72 में 808 लाख जनदिनों से भी ज्यादा रोजगार उपलब्ध कराया। योजना पर 50 करोड़ रुपये प्रति वर्ष की लागत का अनुमान है, अर्थात् चौथी योजना के अन्त तक 1973-74 में, जबकि इसके 3 वर्ष पूरे होंगे, कुल व्यय लगभग 150 करोड़ रुपये होगा। समय-समय पर सूखा से ग्रसित होने वाले क्षेत्रों के लिए बनाए गए ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमों के लिए चौथी योजना में 100 करोड़ रुपये की व्यवस्था है। प्रायोगिक परियोजनाओं में बारानी खेती करने के लिए 20 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

पंचायती राज की त्रिस्तरीय प्रणाली 1959 में शुरू की गई थी। इसके अन्तर्गत ग्राम-स्तर पर पंचायतें, खण्ड स्तर पर पंचायत समितियां और जिला स्तर पर जिला परिषदें होती हैं। इस समय यह प्रणाली कुछ क्षेत्रों को छोड़कर लगभग पूरे देश में फैल चुकी है। विभिन्न राज्यों में, वहां की स्थितियों के अनुसार इनकी संरचना अवश्य कुछ-कुछ भिन्न है। ये लोगों की ही अपनी संस्थाएं हैं और इनका कार्य विकास के लिए स्थानीय संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग कराना तथा लोगों का सहयोग प्राप्त करना है। ऐसी उम्मीद थी कि सामुदायिक विकास खण्डों के 10 वर्ष पूरे होने के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में हुई विकास की गति को ये पंचायती राज संस्थाएं बनाए रखेंगी। हालांकि कई एक कारणों से यह सम्भव नहीं हो सका है।

इस समय पंचायती राज संस्थाओं को जनता की सेवा के लिए अधिक समर्थ बनाने पर जोर दिया जा रहा है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम की प्रगति के लिए दूसरी अवस्था के बाद भी राज्य सरकारों की ओर से कुछ सहायता खण्डों को मिलती रहनी चाहिए। साथ ही पंचायती राज संस्थाओं को स्थानीय संसाधन जुटाने के योग्य बनाने के लिए भी उपाय खोजने होंगे। 1968-69 में पंचायती राज संस्थाओं को करों से 17 करोड़ रुपये की आय हुई थी और 1970-71 में यह आय 21 करोड़ रुपये हुई। इस दिशा में तमिलनाडु, हरियाणा, मध्य प्रदेश, केरल, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों में महत्वपूर्ण परिणाम रहे हैं। इस प्रकार करों से हुई आय में होने वाली वृद्धि से यह संकेत मिलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त करों से संसाधन जुटाए जा सकते हैं।

तो भी, पंचायती राज संस्थाओं के लिए धन की व्यवस्था मोटे तौर पर राज्य स्तर पर राज्य सरकारों द्वारा विशेष योजनाएं शुरू करने के लिए दी गई राशि से ही पूरी होती हैं। इस दिशा में महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान और उड़ीसा का अच्छा रिकार्ड है। कुछ राज्यों में जिला परिषद् और पंचायत समितियों के लिए दी जाने वाली राशि में प्रति वर्ष वृद्धि हुई है। इन राज्यों के अनुभवों से अन्य राज्यों के लिए एक उदाहरण पैदा हो गया है।

फिर आते हैं जनता के कमजोर तबकों के लिए पोषाहार कार्यक्रम और जनजाति विकास कार्यक्रम। महिलाओं और पांच-पर्व से कम आयु के बच्चों का संयुक्त कार्यक्रम और व्यावहारिक पोषाहार कार्यक्रम—ये दोनों कार्यक्रम स्थानीय उत्पादन, खाना पकाने के प्रदर्शन और खिलाने के प्रदर्शनों द्वारा कमजोर तबकों की खाने की आदतें सुधारने और सिखाने पर जोर देते हैं। जनजातियों के विकास के लिए 492 जनजाति विकास खण्डों में एक सघन कार्यक्रम चल रहा है। जनजाति क्षेत्रों की समस्याओं का गहराई से अध्ययन करने के लिए चुने हुए जिलों में छः परियोजनाओं में जनजाति विकास एजेन्सियां खोली गई हैं। चौथी योजना के दौरान प्रत्येक परियोजना में आर्थिक विकास कार्यक्रमों पर 1.5 करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान है।

[शेष पृष्ठ 21 पर

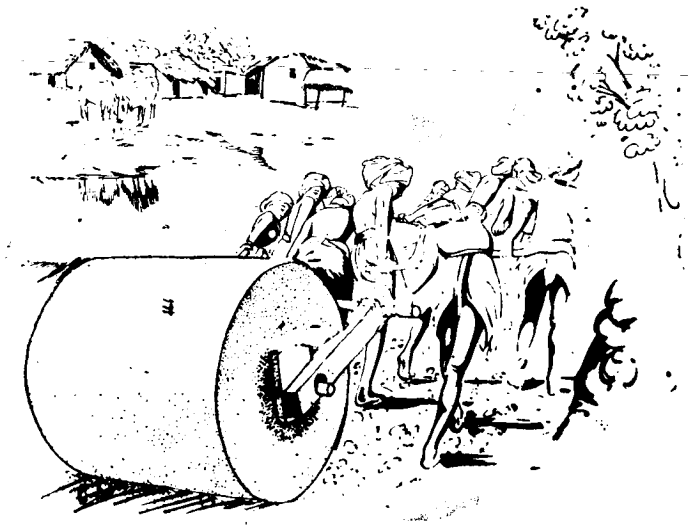

ग्रामीण रोजगार की क्रैश योजना

श्री एस० एम० मुर्शिद

पंचवर्षीय योजनाओं के परिणामस्वरूप हमारे औद्योगिक तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है और देश आर्थिक दृष्टि से काफी आगे बढ़ा है पर इस उत्पादन-वृद्धि का लाभ सभी को न्यायानुसार नहीं मिल पाया। इसका नतीजा यह हुआ है कि अमीर और अधिक अमीर हुए और गरीबों की गरीबी ज्यों की त्यों रही। यह खुशी की बात है कि हमारे योजना निर्माताओं ने आने वाली पंचवर्षीय योजना में सामाजिक न्याय की प्राप्ति का लक्ष्य रक्खा है।

सामाजिक न्याय का अर्थ विभिन्न व्यक्तियों के लिए विभिन्न होता है। मगर इस बात से किसी को मतभेद नहीं कि सामाजिक न्याय की कल्पना में ऐसे हर व्यक्ति के लिए समुचित रोजगार की व्यवस्था शामिल होनी चाहिए, जो रोजगार चाहता हो और उसे कर सके। रोजगार के अवसरों में वृद्धि होने से उत्पादन में भी अवश्य ही वृद्धि होगी। इसलिए हर व्यक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था जरूरी है।

अभी तक हमारे देश में ठीक तरह से यह निश्चित नहीं हो पाया है कि हमारे देश में कितनी बेरोजगारी है। भारत सरकार द्वारा बेरोजगारी के बारे में स्थापित विशेषज्ञ समिति इस मामले पर विचार कर रही है। पर दूसरे सूत्रों से इस बारे में कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है। "इण्डियन स्कूल आफ पोलेटिकल इकानोमी" के श्री वी० एन० डाण्डेकर और श्री नीलकण्ठ रथ ने भारत में फैली हुई गरीबी का अध्ययन किया है और इस अध्ययन के नतीजे हैं कि हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में 40 प्रतिशत आबादी गुजारे के स्तर के नीचे की जिन्दगी बसर करती है जबकि गुजारे का स्तर 1960-61 के मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष 180 है। हमारी कुल आबादी का लगभग 80 प्रतिशत गांवों में रहता है। चूंकि 1971 की जनगणना के अनुसार हमारी कुल आबादी लगभग 54 करोड़ 70 लाख है अतः हमारी ग्रामीण जनसंख्या लगभग 43 करोड़ 70 लाख होगी। इसमें से 17½ करोड़ अर्थात् 40 प्रतिशत की औसत आमदनी 15 रुपये प्रति मास भी नहीं है। इससे पता चलता है कि हमारी बेरोजगारी की समस्या कितनी विकराल है।

इस बेरोजगारी की समस्या से जूझने के हमारे प्रथम प्रयास चौथी पंचवर्षीय योजना की अवधि में शुरू हुए थे। पर ये प्रयास केवल प्रयोगात्मक आधार पर ही हुए हैं और इन से समस्या की गम्भीरता में कोई विशेष फर्क नहीं पड़ा है। पर अब कुछ समय से हमारी सरकार ने इस दिशा में तेज कदम उठाए हैं और अप्रैल 1971 में ग्रामीण रोजगार की क्रैश योजना तैयार की। यह योजना तीन वर्ष के लिए है और चौथी योजना की अवधि के अन्त में समाप्त होगी। इसके दो मुख्य उद्देश्य हैं—(1) देश के सभी जिलों (350) के ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगारी पैदा करना तथा (2) स्थानीय विकास योजनाओं के अनुसार टिकाऊ प्रकृति की परिसम्पत्तियों का निर्माण। योजना का लक्ष्य कृषि मजदूरों के लिए बेमौसमी मजदूरी की दर पर हर जिले में प्रति वर्ष एक हजार व्यक्तियों के लिए रोजगार पैदा करना है। इस एक वर्ष का मानी 10 माह और एक महीने का अर्थ 25 कार्यकारी दिन हैं तथा अधिकतम दैनिक मजदूरी चार रुपये है। इन आंकड़ों से पता चलता है कि योजना का लक्ष्य प्रति वर्ष 875 लाख जन दिनों का रोजगार पैदा करना है अर्थात् 35 लाख व्यक्तियों को वर्ष में 10 माह तक लगातार काम पर लगाए रखना है।

जहां तक योजना के वार्षिक व्यय का सम्बन्ध है यह प्रति वर्ष लगभग 50 करोड़ रुपये आंका गया है जिसमें से 35 रुपये मजदूरी के लिए और 15 करोड़ करोड़ रुपये साज-सामान के लिए है।

यद्यपि योजना अप्रैल 1971 में लागू की गई थी पर काम अक्तूबर में ही शुरू हुआ। इस तरह योजना में निर्धारित 10 माह की अवधि के बजाए केवल 6 मास ही कार्य हुआ और योजना में निर्धारित 50 करोड़ रुपये में से केवल 31.67 करोड़ रुपये ही खर्च किए जा सके जिनसे 808 जनदिनों का रोजगार पैदा हुआ। इसका अर्थ यह है कि इन 6 महीनों की अवधि में लगभग 52 लाख व्यक्तियों को लगातार काम पर लगाए रखा जा सका।

योजना के क्रियान्वयन के पहले ही वर्ष में यह सफलता कोई कम सफलता नहीं है। जहां तक चालू वर्ष का सम्बन्ध है, अभी तक हमें 14 राज्यों और कुछ केन्द्र शासित क्षेत्रों से अप्रैल और जुलाई के बीच की विभिन्न अवधियों की रिपोर्टें मिली हैं। इन रिपोर्टों से पता चलता है कि इन अवधियों में 661.92 रुपये खर्च किए जा चुके हैं जिनसे 214.52 लाख जन-दिनों का रोजगार पैदा हुआ। चालू वर्ष के इन आंकड़ों से यही मालूम होता है कि प्रगति की रफ्तार इस वर्ष भी सन्तोषजनक रहेगी।

इस योजना से राज्य सरकारों और स्थानीय जनता म बड़ा जोश पैदा हुआ है और गरीबी से पीड़ित क्षेत्रों में सच-मुच ही यह वरदान साबित हुई है। बहुत से क्षेत्रों में तो स्नातकों और उनसे कुछ-कुछ कम पढ़े-लिखे लोगों ने भी इसके अधीन रोजगार प्राप्त किया है। एक जिलाधीश ने तो यहां तक रिपोर्ट दी है कि उसके जिले में इस योजना के अधीन रोजगार मिलने के परिणाम स्वरूप काफी हद तक मारधाड़, चोरियां, हत्या तथा डकैतियां भी कम हो गई हैं। लेकिन फिर भी जरूरत इस बात की है कि इस योजना के प्रभाव का वैज्ञानिक और ब्यौरेवार अध्ययन किया जाए। कृषि मन्त्रालय के 12 कृषि आर्थिक अनुसन्धान केन्द्रों से अनुरोध किया गया है कि वे कुछ चुने हुए क्षेत्रों में योजना के सभी पहलुओं को लेकर उसके क्रियान्वयन का ब्यौरेवार अध्ययन करें। इन अध्ययनों की रिपोर्ट शीघ्र ही आनेवाली है।

ग्रामीण रोजगार की क्रैश योजना का उद्देश्य देश के हर जिले में अल्पतम रोजगार उपलब्ध करना है। इसका लक्ष्य उपयोगी तथा टिकाऊ परिसम्पत्तियां पैदा करने के लिए बनाई गई श्रम प्रधान परियोजनाओं के कार्यान्वयन के बारे में प्रारम्भिक अनुभव प्राप्त करना भी है। जहां तक इसके सीमित उद्देश्य का सम्बन्ध है, योजना बिलकुल ठीक है। पर हमें व्यापक उद्देश्यों के बारे में भी सोचना है और पूर्ण रोजगारी के प्रयास चालू करने से पहले यह जरूरी है कि बेरोजगारी की समस्या के आकार-प्रकार को जान लिया जाए। इसके अलावा, यह जानना भी जरूरी है कि ऐसी योजना पर कितनी लागत आएगी और इसमें किन-किन उलझनों से पाला पड़ेगा। इसीलिए कुछ आंकड़े प्राप्त करने के ध्येय से भारत सरकार ने एक प्रायोगिक सघन ग्रामीण रोजगार परियोजना के बारे में सोचा है। यह परियोजना देश में 15 राज्यों के चुने हुए 15 विकास खण्डों में तीन वर्ष की अवधि के लिए लागू होगी। चालू वर्ष में प्रति विकास खण्ड परिव्यय लगभग 10 लाख रुपये आंका गया है। परियोजना का लक्ष्य 15 से 59 वर्ष की आयु के लोगों में से ऐसे हरेक व्यक्ति को उपयुक्त रोजगार मुहैय्या करना है जिसे उसकी जरूरत है। वास्तव में यह पूर्ण-रोजगार मुहैय्या करने का एक प्रयास हैं। जब योजना पूरी तरह से लागू होगी तभी हमें इस पर होने वाले खर्च का पता लगेगा और इन चुने हुए विकास खण्डों की गतिविधियों से अनुमान लगाया जा सकेगा कि देश में किस आकार प्रकार की कितनी बेरोजगारी है। इन आंकड़ों के आधार पर हम देश के सम्बन्ध में सामान्य रूप से कुछ परिणामों पर पहुंच सकेंगे।

पांचवी योजना की रूपरेखा में कुछ बुनियादी अल्पतम आवश्यकताओं का पहले ही उल्लेख कर दिया गया है जिन्हें पूरा किया जाएगा। इन आवश्यकताओं में ग्रामीण सड़कें भी शामिल हैं। ये सड़कें श्रम-प्रधान तरीकों द्वारा बनाई जा सकती हैं। पांचवी योजना की रूपरेखा में सभी मोर्चों पर अधिक से अधिक उत्पादन की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है। ग्रामीण क्षेत्र में कृषि का अधिक से अधिक उत्पादन छोटी सिंचाई, भूमि संरक्षण, वन रोपण आदि पर निर्भर करेगा। ये परियोजनाएं श्रम-प्रधान तकनीकों से ही पूरी की जाएंगी।

मेरी राय में उपरोक्त श्रम-प्रधान परियोजनाएं अच्छी तरह से सोची गई क्षेत्र विकास योजनाओं के आधार पर बनाई जानी चाहिए। जिले को आयोजन की इकाई और खण्ड को योजना के क्रियान्वयन की इकाई के रूप में लिया जा सकता है। इसलिए हर राज्य और हर केन्द्र शासित क्षेत्र को तुरन्त ही व्यापक क्षेत्र विकास योजनाएं तैयार कर लेनी चाहिए ताकि जब पांचवी योजना की अवधि शुरू हो तो काम भी व्यवस्थित ढग से शुरू हो सके और नाजानकारी के कारण समय बर्बाद न हो।

छोटी सिंचाई, भूमि संरक्षण और बन रोपण जैसे श्रम-प्रधान कार्यक्रमों के लिए पांचवी योजना में परिव्यय 7 हजार से 8 हजार करोड़ के बीच होगा। इसके अलावा, 3,500 करोड़ रुपये लोगों की अल्पतम आवश्यकताओं को पूरा करने के 7 सूत्री कार्यक्रम पर खर्च किए जाएंगे। खासतौर से सड़कों का निर्माण इस कार्यक्रम का अंग है और वह श्रम-प्रधान कार्यक्रम होगा। इस प्रकार श्रम-प्रधान कार्यक्रमों पर परिव्यय लगभग साढ़े दस या 11 हजार करोड़ रुपये होगा।

मेरा अपना ख्याल है कि लोगों को ठीक प्रेरणा दी जाए तो कोई वजह नहीं कि मनुष्य अपने श्रम द्वारा सफलता प्राप्त न कर सकें। आन्ध्र प्रदेश में नागार्जुन सागर बांध इसका सबूत है। इस विशाल बांध का निर्माण हजारों स्त्री पुरुषों द्वारा अपने हाथों से बटोरकर डाली गई मिट्टी से हुआ था। इसीलिए स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू ने इसे मानवता का मन्दिर कहा था। अतः इसमें शक नहीं कि हमारा-भविष्य उज्ज्वल है और आशा है कि विश्वास और उत्साह के साथ हम आगे बढ़ते चले जाएंगे।

अपने सीमित साधनों से...

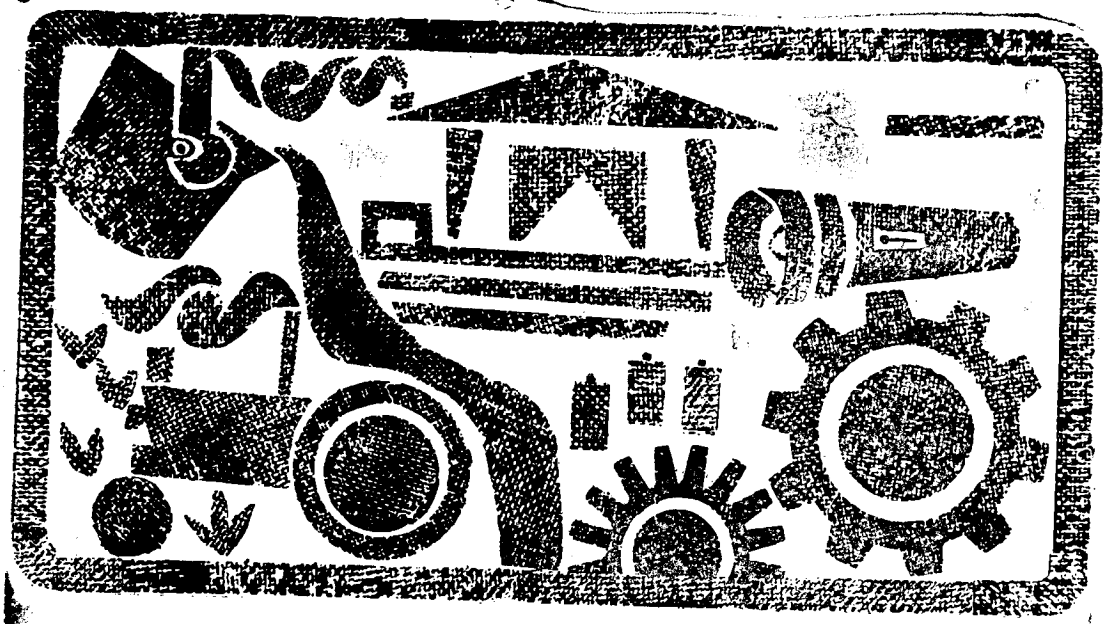

भारत को अपने सभी मोरचों पर लड़ने के लिए हमारा योगदान

सर्वतोमुखी विकास के लक्ष्य की ओर भारत जैसे जैसे कदम उठा रहा है, हम भी अपना योगदान दे रहे हैं। खाद्यान्न के मोरचे पर यूनियन कारबाइड कीटनाशक और पोलीएथिलीन फिल्म का प्रबंध करता है जिन से किसानों को बड़ी और उत्तम पैदावार प्राप्त करने में सहायता मिलती है। घर के मोरचे पर हम आपके लिए भिन्न भिन्न प्रकार की घरेलू उपयोग की वस्तुएं सुलभ कराते हैं जिनके अंतर्गत बैटरी और फ्लैशलाइट से लेकर हमारे पोलीएथिलीन से बने रंगीन धारक तक हैं। हम औषधि निर्माण, रोगन, कपड़ा उद्योग, लोहा और इस्पात तथा रबर उद्योग के लिए अनिवार्य कच्चा माल भी मुहैया करते हैं। निर्यात के क्षेत्र में यूनियन कारबाइड नये बाजारों के लिए पांचों महाद्वीपों का विक्रयार्थ सर्वेक्षण करता है और इसका माल संयुक्त राज्य अमेरिका सहित ५० देशों में जाता है। उपरोक्त, उन कार्यों में से कुछ एक हैं जिनका, भारतीय जनता के जीवनस्तर की प्रोन्नति के लिए यूनियन कारबाइड लिमिटेड द्वारा बीजारोपण किया गया है। वास्तव में अपने सीमित साधनों से हम भारत की सहायता करते है ताकि वह सभी मोरचों पर अपनी लड़ाई लड़ सके।

UNION CARBIDE

—द्वारा प्रगति के हेतु बीजारोपण

UC—1656 D—CM

कार्यक्रम, आशाएं और उपलब्धियां

विकासशील देशों में आर्थिक उन्नति, सामाजिक न्याय के साथ होनी चाहिए। चौथी पंचवर्षीय योजना में विकास की प्रक्रिया में तेजी लाने के साथ ही समानता और सामाजिक न्याय के लक्ष्यों की प्राप्ति पर भी जोर दिया गया है। इस तरीके से विकास करने पर ही देश के जनसाधारण तक आर्थिक वृद्धि के लाभ पहुंचाए जा सकते हैं।

अधिक उपज देने वाली किस्मों और खेती की आधुनिक तकनीकों ने पिछले कुछ वर्षों में ही देश को खाद्यान्न के मामले में अभाव की स्थिति से आत्म-निर्भरता की स्थिति तक पहुंचा दिया है। पर, इससे समृद्ध किसान, जिसे आदान और सेवाएं आसानी से मिलती रहीं, और उपेक्षित छोटे किसान के बीच की दूरी बढ़ गई है। योजना के उद्देश्यों में बड़े और छोटे किसान के बीच असमानता को दूर करने पर जोर दिया गया है। सामाजिक न्याय की मांग है कि ऐसे छोटे किसानों को अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए विकास कार्यों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहन दिए जाएं। खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए यह भी जरूरी हो जाता है कि छोटे किसानों

एम० ए० कुरैशी

के पास जो कृषि योग्य भूमि है उसका पूरा-पूरा उपयोग किया जाए। यह तो सभी जानते हैं कि 75 प्रतिशत से भी अधिक ग्रामीण जनता कृषि में लगी है। जोतें औसतन छोटी ही हैं और उनका बंटवारा भी असमान है। दो हैक्टेयर या इससे भी छोटी जोतों की संख्या कुल जोतों की संख्या का 62 प्रतिशत है पर यह कृषिगत क्षेत्र कुल कृषिगत क्षेत्र का 20 प्रतिशत से भी कम है। इस प्रकार, संख्या में अधिक पर आर्थिक दृष्टि से पिछड़े ग्रामीण समुदाय के इस छोटे तबके में ऐसे छोटे किसान हैं जिनके पास दो हैक्टेयर से भी कम भूमि है।

अनेक रुकावटें

यद्यपि आधुनिक तकनीकों का मुख्य लाभ बड़े किसानों को ही पहुंचा है, फिर भी कुछ छोटे किसानों ने अधिक उपज देने वाली किस्मों को अपनाकर यह दिखा दिया है कि उचित (आवश्यक) जानकारी और सहायता मिलने पर वे भी अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। यह बात खेती पर आधुनिक तकनीकों के प्रभाव जानने के लिए किए गए विभिन्न अध्ययनों से भी सिद्ध हो चुकी है। जोतों के विखण्डन, पट्टेदारी की असुरक्षा, आदानों और जल की अपर्याप्त और असामयिक सप्लाई, ऋण, विपणन और भण्डारण सुविधाओं का अभाव आदि कारणों से अधिकांश छोटे किसान वैज्ञानिक खेती नहीं अपना सके। यदि ये कठिनाइयां दूर हो जाएं तो कुछ समय में छोटे किसान भी आत्म-समर्थ बन जाएंगे। सीमान्त कृषकों के पास तो एक हैक्टेयर से भी छोटी जोतें हैं और इसीलिए उनकी समस्या तो और भी जटिल है। ऐसे किसानों की कृषि से सम्बद्ध अन्य सहायक कार्य अपनाकर आय बढ़ाने के लिए मदद करनी होगी। कृषि श्रमिक भी ग्रामीण समुदाय का एक आवश्यक और महत्वपूर्ण अंग हैं। उनकी भी एक बड़ी समस्या है और उन्हें भी पूरे वर्ष के लिए कोई न कोई आय का साधन चाहिए। अनेक आदिम जाति क्षेत्र ऐसे हैं जहां आर्थिक विकास के सघन प्रयास करने होंगे।

विशेष कार्यक्रम

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब तबकों की

समस्याओं को हल करने के लिए चौथी योजना में अनेक विशेष कार्यक्रम तैयार किए गए हैं जो अधिकतर प्रायोगिक परियोजनाओं के रूप में हैं। ये कार्यक्रम हैं :—

(i) आत्म-समर्थ छोटे किसानों के लिए प्रायोगिक परियोजनाएं, जिन्हें लघु कृषक विकास एजेन्सी परियोजनाएं कहा जाता है।

(ii) सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिकों के लिए प्रायोगिक परियोजनाएं जिन्हें सीमान्त कृषक और कृषिश्रमिक परियोजनाएं कहा जाता है।

(iii) आदिमजाति विकास परियोजनाएं।

(iv) सूखा-ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम

(v) ग्रामीण रोजगार की कैश योजना

(vi) बारानी खेती परियोजनाएं

(vii) कृषि सेवा केन्द्र

गरीब तबकों की समस्याओं को हल करने के लिए और उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए इन सब कार्यक्रमों में से छोटे और सीमान्त कृषकों तथा कृषि श्रमिकों के कार्यक्रम ही प्रमुख हैं। केन्द्रीय क्षेत्र योजना के अन्तर्गत देश भर में 46 लघु कृषक विकास एजेन्सी परियोजनाएं स्वीकृत की गई हैं। इसी प्रकार सीमान्त कृषक एवं कृषि श्रमिक क्षेत्रों के लिए 41 सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक परियोजनाएं स्वीकृत की गई हैं। इन कार्यक्रमों के लिए चौथी योजना में कुल 106 करोड़ रुपए का प्रावधान है। इन कार्यक्रमों को चलाने के लिए समिति पंजीकरण अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत विशेष एजेन्सियां स्थापित की गई हैं। हालांकि इन कार्यों के संचालन और समन्वयन के लिए अलग संस्थाएं हैं, फिर भी इन कार्यक्रमों को लागू करने के लिए ये एजेन्सियां क्षेत्रीय स्तर पर राज्य सरकार की मौजूदा विस्तार सेवा पर निर्भर करती हैं।

"छोटे किसान" उन्हें माना गया है जो सुविधाओं के विकास, उन्नत बीज, उर्वरक और कीटनाशक आदि के उपयोग तथा ऋण और विपणन की सुविधाएं उपलब्ध होने पर आत्मसमर्थ बन सकते हैं। ऐसे छोटे किसानों की पहचान के लिए एक से लेकर तीन हैक्टेयर तक की जोत-सीमा निर्धारित की गई है। "सीमान्त कृषकों" के लिए, जिनके पास एक हैक्टेयर से भी छोटी जोतें हैं, पशु-पालन, मुर्गीपालन, सूअरपालन, भेड़पालन आदि सहायक धन्धों पर जोर दिया जाता है जिससे खेत से होने वाली आय में बढ़ोत्तरी की जा सके। यद्यपि इन कार्यों की मदद से भी सीमान्त कृषक आत्म-समर्थ तो न हो सकेगा पर हां, इनसे उसकी आर्थिक दशा अवश्य सुधरेगी। कृषि श्रमिकों के लिए ये परियोजनाएं ऐसे ग्रामीण निर्माण कार्य लागू कर रही हैं जिनमें काफी श्रमिकों की आवश्यकता हो ताकि फसलों के मौसम के बाद भी उन्हें रोजगार मिले और इस प्रकार वर्ष भर उन्हें काम मिल जाए जिससे उन्हें आमदनी होती रहे।

इस समय 46 लघु कृषक विकास एजेन्सी परियोजनाएं चल रही हैं। चौथी योजना की अवधि के लिए प्रत्येक लघु कृषक विकास एजेन्सी परियोजना के लिए डेढ़ करोड़ रुपए और प्रत्येक सीमान्त कृषक और कृषिश्रमिक परियोजना के लिए एक करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है। आशा है कि प्रत्येक लघु कृषक विकास एजेन्सी परियोजना के अन्तर्गत 50,000 छोटे किसान और प्रत्येक सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक परियोजना के अन्तर्गत 20,000 सीमान्त कृषक तथा कृषि श्रमिक आएंगे। भारत सरकार द्वारा निर्धारित पैरामीटर के अनुसार इन किसानों को छांटने के लिए और लघु सिंचाई, मुर्गीपालन आदि सहायक रोजगार, भूमि संरक्षण और भूमि विकास आदि योजनायें लागू करने के लिए ये एजेन्सियां ही जिम्मेदार हैं। विकास कार्यों के लिए प्रोत्साहन के रूप में छोटे किसानों को 25 प्रतिशत सहायता उपलब्ध कराई जाती है तथा सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिकों को $33\frac{1}{3}$ प्रतिशत की सहायता उपलब्ध कराई जाती है। एजेन्सियां उनके लिए बनाई गई योजनाओं के आधार पर उन्हें सहकारी/व्यावसायिक बैंकों से ऋण प्राप्त करने में सहायता भी करती हैं। क्षेत्रीय स्तर पर प्रसार संगठन तकनीकी मार्गदर्शन और देखभाल करता है। अधिक उपज देने वाली किस्मों और व्यापारिक फसलों को उगाने के लिए प्रोत्साहन देने की दृष्टि से सीमान्त कृषकों को दो मौसम तक आदानों के लिए भी सहायता दी जाती है। ऋण के सही इस्तेमाल करने के लिए एजेन्सियां सहकारी संस्थाओं को बैंक और प्राथमिक समिति स्तरों पर अतिरिक्त स्टाफ भर्ती करने के लिए प्रबन्ध सम्बन्धी सहायता भी उपलब्ध कराती हैं। इन कार्यक्रमों के लिए कस्टम सेवाओं, विपणन, माल के तैयार करने और उसके भण्डारण की सुविधाओं के लिए भी एक मजबूत ढांचे की जरूरत है। ये एजेन्सियां परियोजना क्षेत्रों में ऐसे ढांचों को मजबूत बनाने के लिए प्रबन्ध सम्बन्धी सहायता भी उपलब्ध कराती हैं। इन कार्यक्रमों के लिए आंशिक सहायता दे रही हैं। सहकारी ऋण को प्रोत्साहित करने के लिए एजेन्सियां 9 प्रतिशत का जोखिम धन देती हैं तथा लघु कृषक विकास एजेंसी सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक एजेन्सी क्षेत्रों में सहकारी संस्थाओं द्वारा छांटे गए किसानों को दिए गए अतिरिक्त ऋणों पर 11 प्रतिशत जोखिम धन देती हैं। इस तरह ये एजेंसियां खेतों पर और बाहर हर प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराके छांटे गए किसानों को दिए गए अतिरिक्त ऋणों पर 11 प्रतिशत जोखिम धन देती हैं। इस तरह ये एजेंसियां खेतों पर और बाहर हर प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराके छांटे गए किसानों के साथ आर्थिक विकास की गति तेज करने में उत्प्रेरक का काम कर रही हैं।

शानदार प्रगति

लघु कृषक विकास एजेन्सी/सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक एजेन्सियों ने सबसे

पहले किसानों को छांटने का काम शुरू किया है और विभिन्न कामों को लागू करने में काफी सफलता प्राप्त की है। मई 1972 के अन्त तक लघु कृषक विकास एजेन्सियों ने 15.80 लाख छोटे किसान और सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक एजेन्सियों ने 7.56 लाख सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक छांटे हैं। इनमें से 6.93 लाख छोटे किसानों और 1.59 लाख सीमान्त कृषकों को सहकारियों का सदस्य बना लिया गया है। लघु कृषक विकास एजेन्सियों में लगभग 40,000 किसानों को कुओं, नलकूपों, पम्पसैटों और अन्य लघु सिंचाई कार्यों के कार्यक्रम द्वारा उनकी सिंचाई सुविधाओं के विकास के लिए सहायता दी गई है। सीमान्त कृषक एवं कृषि श्रमिक एजेन्सी क्षेत्रों में मई 1972 के अन्त तक 33,340 किसानों को सहायता दी गई है। इन कार्यक्रमों में सहायक धन्धों की ओर भी उचित ध्यान दिया जा रहा है। लघु कृषक विकास एजेन्सियों में 8,978 दुधारू पशु इकाइयां और 1,996 पशुपालन इकाइयां स्थापित की जा चुकी हैं। सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक योजनाओं में इन इकाइयों की संख्या क्रमशः 5,540 और 2,556 है। लघु कृषक विकास एजेन्सियों ने अल्पावधि, मध्यावधि और दीर्घावधि ऋणों के रूप में 30.86 करोड़ रुपये की सहायता दी है और सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक एजेन्सियों ने 1.96 करोड़ रुपये की सहायता दी है। सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक एजन्सी के कार्य का एक महत्वपूर्ण अंग कृषि श्रमिकों और सीमान्त कृषकों के लिए फसलों के मौसम के बाद के समय में भी ग्रामीण कार्यों में रोजगार उपलब्ध कराना रहा है। जहां लघु कृषक विकास एजेन्सी छोटे किसानों को अपने आपका रोजगार उपलब्ध कराएगी, वहां सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक एजेन्सी सीधा रोजगार और अपने आपका रोजगार दोनों उपलब्ध कराएगी। अनुमान है कि चौथी योजना की अवधि में इस प्रकार लगभग 23 लाख छोटे किसानों और 6 लाख सीमान्त कृषकों को अपने आपका रोजगार मिलेगा और लगभग 60,000 सीमान्त कृषकों को सीधे गैर-मौसमी रोजगार मिलेगा। इसका प्रभाव यह होगा कि 21 लाख से भी अधिक कृषि श्रमिकों को किसी न किसी समय अवश्य रोजगार मिलेगा।

जनजाति परियोजनाएं

पिछड़ी जनजातियों और आदिवासी क्षेत्रों की समस्याएं कुछ-कुछ छोटे और सीमान्त कृषकों जैसी ही हैं, पर संचार साधनों और संरचनात्मक सुविधाओं के अभाव के कारण इनकी समस्याएं अधिक जटिल हैं। जनजातियों के रीति-रिवाजों और नियमों के कारण, जो हर जनजाति में अलग-अलग होते हैं, इन क्षेत्रों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी लिए 1970-71 में जनजातियों के विकास के लिए कुछ चुनी हुई प्रायोगिक परियोजनाएं शुरू करने का फैसला किया गया। ऐसी छः परियोजनाएं—आन्ध्र प्रदेश और बिहार के लिए एक-एक तथा मध्य प्रदेश और उड़ीसा के लिए दो-दो—स्वीकृत की गई थीं और इनमें हर एक के लिए कुल 1.5 करोड़ रुपये की राशि निर्धारित की गई थी। इन परियोजनाओं में बुनियादी तरीका यह होगा कि आर्थिक विकास के लिए एक केन्द्रीय कार्यक्रम तैयार किया जाए और इसे सघन रूप से लागू किया जाए तथा समयानुसार पेय जल, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं आदि समाज-सेवाएं उपलब्ध कराई जाएं ताकि सभी दिशाओं में विकास किया जा सके। परियोजना की योजनाएं स्थानीय स्तर पर तैयार की जाती हैं ताकि लोगों की जरूरतें पूरी की जा सकें।

लघु कृषक विकास एजेन्सी तथा सीमान्त कृषक और कृषि श्रमिक परियोजनाओं की तरह ही जनजाति विकास एजेन्सियां बनाई गई हैं जो उचित कार्यक्रम तैयार करेंगी और राज्य सरकार की मौजूदा प्रसार संस्थाओं और अन्य संस्थाओं की सहायता से उन्हें लागू करेंगी। वित्तीय वर्ष के अन्त में कुछ स्टाफ की नियुक्तियां आदि औपचारिकताएं तथा प्रारम्भिक क्रियाएं पूरी की गईं और एजेन्सियों को धन दिया गया। आशा है कि चालू वर्ष के दौरान सभी 6 परियोजनाओं में लोगों को छांटने का काम पूरा हो जाएगा और उनके विकास के लिए उचित योजनाएं तैयार कर ली जाएंगी।

सूखाग्रस्त क्षेत्र

सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम, जिसे पहले ग्रामीण निर्माण कार्य कार्यक्रम कहते थे, 1970-71 में शुरू किया गया था। यह कार्यक्रम 13 राज्यों के उन 54 जिलों में चल रहा है जिनमें निश्चित समय पर (लगातार) सूखा पड़ता है और इन जिलों का चुनाव वर्षा, सूखा की भयानकता तथा मौजूदा सिंचाई सुविधाओं के आधार पर किया गया है। चौथी योजना की अवधि में प्रत्येक जिले के लिए 2 करोड़ रुपये का प्रावधान है। सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम क्षेत्रीय विकास पर अधिक केन्द्रित है और यह देश के सबसे कमजोर क्षेत्रों में उत्पादन और वृद्धि की गति में तेजी लाने के लिए तैयार किया गया है। जिन कार्यक्रमों में भारी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होती है उनमें साधारण-तया मध्यम और लघु सिंचाई परियोजनाएं भूमि संरक्षण और जल निकास कार्य तथा गांव और जिला सड़कों का निर्माण आदि के कार्य आते हैं। इस प्रकार इस कार्यक्रम से भारी संख्या में रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे।

1971-72 तक करीब 80 करोड़ रुपये की योजनाएं स्वीकृत की जा चुकी थीं जिनमें लघु सिंचाई परियोजनाओं के लिए 60 प्रतिशत, भूमिसंरक्षण और जल निकास के लिए 10 प्रतिशत तथा 30 प्रतिशत सड़कों के निर्माण के लिए रखा गया था। इन 54 जिलों में अब कार्यक्रम तेजी पकड़ रहा है। कार्यक्रम की सफलता के साथ ही यह भी जरूरी हो गया है कि क्षेत्रों की भविष्य में सूखे से संघर्ष करने की शक्ति बढ़ाई जाए और उपलब्ध तकनीकों से इन समस्याओं को खत्म किया जाए।

ग्रामीण रोजगार

ग्रामीण रोजगार की क्रैश योजना एक और केन्द्रीय क्षेत्र योजना है और रोजगार के अतिरिक्त अवसर पैदा करने के लिए बनाई गई इस योजना पर 50 करोड़ रुपये के वार्षिक व्यय का प्रावधान है। यह योजना 1971-72 में चालू की गई थी और प्रत्येक चुने हुए जिले में 10 महीने के लिए 100 रु० मासिक पर 1000 लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने की दृष्टि से तैयार की गई थी। एक महीने में 25 कार्य दिवस मानें तो यह योजना प्रत्येक जिले में 2.19 लाख जन-दिन के बराबर रोजगार पैदा करेगी। आन्ध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, केरल, उड़ीसा और तमिलनाडु आदि राज्यों में तो इन लक्ष्यों से अधिक सफलता प्राप्त की जा चुकी है। राज्य सरकारों ने अपनी गति कायम रखी है और आशा है कि चालू वर्ष में उपलब्धियां और भी बढ़ेंगी। 15 से 59 वर्ष की आयु के लोगों के लिए उपयुक्त श्रमकार्य उपलब्ध कराने के लिए चालू वर्ष में एक और महत्वपूर्ण योजना शुरू की जा रही है जिसका नाम है—'प्रायोगिक सघन ग्रामीण रोजगार परियोजना।' यह योजना 1 नवम्बर, 1972 को शुरू की जाएगी।

बारानी खेती

1970-71 में केन्द्र प्रायोजित योजना के रूप में बारानी खेती परियोजनाएं शुरू की गई थीं। इनके लिए 20 करोड़ रुपये की राशि निर्धारित की गई थी। ये परियोजनाएं प्रशिक्षण-सह-प्रदर्शन केन्द्रों के रूप में हैं। इन परियोजनाओं के कार्य हैं—भूमि संरक्षण, भूमि विकास, भूमि को समतल बनाना, जल निकास, नई जल्दी पकने वाली और सूखे को सह सकने वाली उन्नत किस्म की फसलों का प्रयोग, उर्वरक का प्रयोग, आदि। इन प्रायोगिक परियोजनाओं में अनुसन्धान के सभी उपलब्ध परिणामों को समेकित रूप से आजमाया जाता है। ऐसी 24 परियोजनाओं को स्वीकृति दी जा चुकी है और और इनमें से 23 शुरू हो चुकी हैं। बारानी खेती पर समन्वित अनुसन्धान परियोजनाएं भी साथ-साथ ही चलाई जा रही हैं जो कि सीधे प्रयोग के लिए अनुसन्धान सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध कराती हैं। इन योजनाओं पर कुल 8 करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान है और प्रति एक करोड़ रुपये से वर्ष में 6 महीने के लिए लगभग 15,000 व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा।

कृषि सेवा केन्द्र

तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों में भी बेरोजगारी बढ़ रही है। दूसरी ओर, छोटे और मध्यम किसान, जो कृषक समुदाय का एक बड़ा भाग है, तकनीकी सेवाओं के अभाव में आधुनिक खेती अपनाने में असमर्थ रहे हैं। इसको देखते हुए तथा विकास की गति में तेजी लाने के लिए भारत सरकार ने तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त बेरोजगार व्यक्तियों को कृषि-सेवा केन्द्र स्थापित करने के लिए वित्तीय, भौतिक और तकनीकी सुविधाएं उपलब्ध कराने की एक योजना चालू की है। इसका उद्देश्य कृषि यन्त्रों को किराए पर उपलब्ध कराने, ट्यूबवैल खोदने, कुएं गहरे करने, कृषि यन्त्रों की मरम्मत और रख-रखाव, पौध संरक्षण, सेवाएं और सलाह देने की सेवाएं उपलब्ध कराना है। योजना बेरोजगार इंजीनियरी स्नातकों और डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों तथा उद्योग कृषि में कुछ अनुभव प्राप्त कृषि स्नातकों को ऐसी सुविधाएं जुटाने में सहायता देगी। राज्य कृषि-उद्योग निगमों के प्रशिक्षण सैल उनके पहले के अनुभव के आधार पर एक से लेकर चार महीने तक का प्रशिक्षण देने के लिए उद्यमशील व्यक्तियों का चुनाव करेंगे। इन प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों को स्टेट बैंक आफ इण्डिया और अन्य व्यावसायिक बैंक ब्याज की कम दरों पर ऋण उपलब्ध कराएंगे। चौथी योजना के दौरान ऐसे 2500 केन्द्र स्थापित करने की योजना है। इनमें से 201 केन्द्र स्थापित किए जा चुके हैं। एक केन्द्र में औसतन 6 कुशल/अर्धकुशल कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त किया जाएगा जो विभिन्न मशीनी कार्य करेंगे।

टिकाऊ काम

यद्यपि इनमें से कई परियोजनाएं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की भारी क्षमता रखती हैं, पर फिर भी ऐसे टिकाऊ कार्यों पर जोर देने की आवश्यकता है जो काफी अर्से तक चलें और ढांचा मजबूत बने तथा क्षेत्र का बहुमुखी विकास हो सके। इस सन्दर्भ में लघु सिंचाई कार्यों का महत्व भी कम नहीं है। अतिरिक्त सुविधाएं उपलब्ध कराने से न केवल कृषि उत्पादन बढ़ेगा बल्कि किसानों को पूर्ण रोजगार मिलेगा और अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। चौथी योजना में लघु सिंचाई के लिए 511 करोड़ रुपये का प्रावधान है और संस्थात्मक व्यय लगभग 650 करोड़ रुपये होगा। लघु सिंचाई के विकास में लोगों की अपनी सहायता अनुमानतः 300 करोड़ रुपये होगी। इस सारे व्यय से कुशल/अर्धकुशल व्यक्तियों के साथ-साथ अकुशल व्यक्तियों को भी लाभदायक रोजगार प्राप्त होगा। इससे पहले से काम कर रहे लोगों का काम चलता रहेगा। इन सभी योजनाओं द्वारा ग्रामीण समुदाय के आय के स्तर में सुधार आएगा। यद्यपि इस प्रकार के विकास कार्यों से सारी ग्रामीण श्रम शक्ति को रोजगार मुहैया नहीं किया जा सकता, तो भी इस प्रकार के मजबूत और स्थायी ढांचे के निर्माण से उन्हें आने वाले वर्षों में रोजगार के अधिक अवसर मिलेंगे।

RAAS/B/139A HIN

कैसे हल करें यह विशालकाय समस्या?

अन्न-सम्बंधी ज़रूरतों के लिए आत्म-निर्भर होकर!

बैंक ऑफ़ इंडिया कृषि-विकास के लिए बड़े पैमाने पर मदद देती है!

बैंक ऑफ़ इंडियाने फ़सल उगाने के लिए ऋण देने के अलावा कृषि-विकास सम्बन्धी कार्य जैसे भू-विकास, लघु सिंचाई योजना, खेतों के यंत्रीकरण के लिए मशीनें, कस्टम्स सर्विस तथा अन्य सम्बन्धित उद्योग जैसे दूध-उत्पादन (डेरी), मुर्गी-पालन, मछली-व्यवसाय आदि पर रु. २६, करोड़ से भी अधिक आर्थिक मदद दी है।

३३,००० से भी अधिक किसान भाइयों को बैंक ऑफ़ इंडिया से प्रत्यक्ष मदद मिल रही है।

बैंक ऑफ़ इंडिया में जमा आपकी रक़म यानी
राष्ट्र-हित में सहयोग, आपके लिए ब्याज

बैंक ऑफ़ इंडिया में बचत कीजिए।
यह एक अच्छी आदत है!

बैंक ऑफ़ इंडिया

सामुदायिक विकास

के बदलते रंगढंग

यू० सी० घिलड्याल

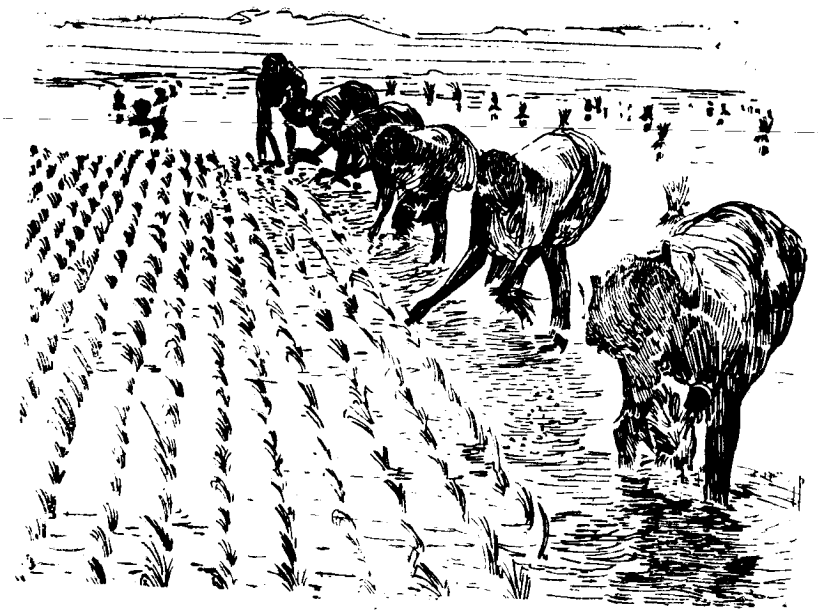

जब भारत आजाद हुआ तो यह जरूरी था कि गांवों के विशाल समुदायों को जनतान्त्रिक ढांचे के अन्दर लाया जाता जिससे उनके विचारों और व्यवहारों को आज के वैज्ञानिक युग में जनतान्त्रिक समाजवाद के आदर्शों के अनुरूप ढाला जा सके। श्री नेहरू जी ने इस कार्यक्रम को ऐसी प्रक्रिया कहा था जिससे जन सामान्य के प्रयासों को समुदायों की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों को सुधारने, इनका राष्ट्र के जीवन के साथ तालमेल बिठाने और इन्हें राष्ट्रीय प्रगति में पूरे तौर से योग देने के योग्य बनाने के लिए किए जाने वाले सरकारी अधिकारियों के प्रयासों से सम्बद्ध किया जा सकता है।

यह महसूस किया गया था कि यदि सामुदायिक विकास का केन्द्रीय लक्ष्य "मनुष्य में विनियोग" था तो इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए एक समन्वित विस्तार सेवा प्रधान साधन होनी चाहिए और तकनीकी और वैज्ञानिक ज्ञान विस्तार अभिकरण के माध्यम से जनता तक पहुंचना चाहिए।

सामुदायिक विकास ने हमारे जैसे विशाल देश के ग्रामीण क्षेत्र में व्यापक आधार पर अपना काम फैलाकर और साथ ही साथ आर्थिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक तथा जनतान्त्रिक विकास प्राप्त करने के लिए गुंजाइशें और तेजी लाकर एक इतिहास का निर्माण किया है। यह शुरू से अब तक तीन विशिष्ट दौरों में से गुजरा है। कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं पर जो जोर दिया गया, वह राष्ट्रीय आवश्यकताओं की प्राथमिकताओं में परिवर्तन के अनुरूप था।

बढ़ती आशाएं

कार्यक्रम 2 अक्तूबर, 1952 को एक प्रायोगिक आधार पर शुरू किया गया था। अमेरिका की सरकार और खासकर "फोर्ड फाउण्डेशन" द्वारा उपकरण, धन और तकनीकी जानकारों की सहायता का प्रस्ताव भी उस समय बड़ा सामयिक था। पहली प्रायोगिक परियोजनाओं में जो अनुभव प्राप्त हुआ, वह भी बड़ा उपादेय और कार्यक्रम के विस्तार को प्रोत्साहन देने वाला था।

विकास के समन्वित व्यापक कार्यक्रम के लिए जन सहयोग ने पहले-पहल विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न रूप धारण किए। श्रमदान से सामान्य जनता की भलाई के लिए योजक सड़कें, नालियां, पुलियां, खड़ंजे और सामुदायिक केन्द्र आदि बनाए गए और हर जगह इनके बड़े अच्छे नतीजे निकले। इसे जनता की दिलचस्पी और सहयोग का मापदण्ड समझा गया। वास्तव में इसमें कमी यह थी कि जिन्होंने वास्तव में ऐसे कार्यक्रमों में भाग लिया, वह वे लोग थे जो ग्रामीण समुदायों के उच्च वर्ग के लोगों के हाथों पीड़ित होते रहे थे। स्थानीय संसाधानों और नेतृत्व को ठीक ढंग से काम में नहीं लाया गया और न उनका ठीक ढंग से विकास किया गया। स्कूल, सहकारियां, पंचायतें आदि जन संस्थाएं जो जन सहयोग प्राप्त करने की वाहिका और साधिका बन सकती थीं, निष्क्रिय रहीं। पंचायतें उस समय स्वास्थ्य मन्त्रालय के अन्तर्गत थी और उन्हें विकास के काम के लिए उपयोग में नहीं लाया गया। 1958 में ही स्थानीय कार्यों को चलाने के अधिकार पंचायतों को दे दिए गए। बाद में 1959 में स्थानीय सरकारी निकायों को कानूनी अधिकार भी दे दिए गए। बलवन्तराय मेहता कमेटी ने इन संस्थाओं को और आगे बढ़ाया और ऐसी सिफारिशें कीं जिनसे पंचायती राज के रूप में उनका पुनरुत्थान हुआ। 1959 और 1964 के बीच पंचायती राज अनेक राज्यों में लागू हुआ। पंचायती राज के क्रियान्वयन और उसके बाद प्रशासनतन्त्र और स्थानीय सरकारी संस्थाओं के विलीनीकरण के साथ-साथ सामुदायिक विकास में परिवर्तन आया।

पंचायतों ने सामाजिक-राजनीतिक विकास की संस्थाओं के रूप में काम किया जबकि आर्थिक पुनरुत्थान के लिए सहकारिता को चुस्त करने की जरूरत थी। 1958 में सहकारिता को खाद्य तथा कृषि मन्त्रालय से हटाकर सामुदायिक विकास मन्त्रालय को सौंप दिया गया और तब यह मन्त्रालय सामुदायिक विकास और सहकारिता मन्त्रालय कहा जाने लगा।

स्कूल शिक्षा मन्त्रालय के आधीन थे परन्तु स्कूलों के अध्यापक, खासतौर से वे जो गांवों की पाठशालाओं में पढ़ाते-लिखाते थे, किसी विशेष कार्य के लिए बड़े शक्तिशाली औजार थे और सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने उनके प्रशिक्षण को सामुदायिक संगठन तथा विस्तार शिक्षा का एक अविभाज्य अंग समझा। कालान्तर में जब स्कूल स्थानीय सरकारी संस्थाओं के नियन्त्रण में आए तो जनता, समुदाय और इनके अपसी कार्यकलापों का सामुदायिक विकास पर बड़ा असर पड़ा और इसका ढांचा ही बदल गया।

1950 से 1960 तक के दशक में सामुदायिक विकास एक समन्वित और व्यापक कार्यक्रम के रूप में कार्य करता रहा पर वास्तव में शुरू से ही कृषि उत्पादन पर विशेष जोर दिया गया था। बहूद्देश्यीय पहुंच की परिकल्पना के कारण ग्रामसेवक हरफन मौला बन गया जबकि विकास प्रशासन की क्षति पर ऐसा हुआ। गांव तथा खण्ड स्तरों पर विस्तार दल का बहूद्देश्यीय कार्यकर्त्ता तथा समाज शिक्षा संगठक भी वही था जबकि विकास खण्ड अधिकारी तथा अन्य अफसर विषय विशेषज्ञ मात्र थे। वास्तव में तो खण्ड का दल खण्ड के स्तर पर या उससे नीचे सामयिक, पर्याप्त, उचित तथा निरन्तर सहायता देने के ध्येय से समन्वित और संगठित और परस्पर सम्बन्धित सेवा मुहैया करने के लिए बनाया गया था।

1950 से 1960 तक का दशक परिवर्तनों और तेज कार्रवाइयों का दशक था और एक ऐसा दशक था जिसमें लोगों को नई सम्भावनाओं का पता लगा। यह बढ़ती हुई आकांक्षाओं और परीक्षणों का दशक था। इसी दशक में नए संगठन खड़े हुए और सरकारी अभिकरणों द्वारा काम करने की नई पहुंच और नए तरीके निकाले गए।

निराशा

कार्यक्रम का प्रसार इसलिए भी अधिक तेजी से हुआ कि राजनीतिज्ञों ने अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों को इस कार्यक्रम में शामिल करने के लिए दबाव डाले। पर तेजी से बढ़ते हुए कार्यक्रम को चलाने के लिए तैनात किए गए कार्यकर्त्ता ढीले रहे और धन की कमी पड़ने लगी थी। नतीजा यह हुआ कि लोगों और कार्यकर्त्ताओं में अविश्वास पैदा हो गया। इससे 1950 से 1960 तक के दशक में लोगों की जो आकांक्षाएं बढ़ी थीं वे अगले दशक में आकर क्षीण होने लगीं। योजनाओं के व्यवस्थित आयोजन और क्रियान्वयन के लिए पहले पांच वर्षों में खण्ड के लिए 12 लाख और अगले पांच वर्षों में 5 लाख रुपये की व्यवस्था की गई थी। पर यह धन मुहैया करना कई कारणों से केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बूते से बाहर हो गया और इसका सामुदायिक विकास के प्रशासन के काम-काज पर बहुत बुरा असर पड़ा। खण्डों के द्वितीय चरणोत्तर काल में निराशा का चित्र सामने आया। धन के अभाव में कार्रवाइयां ढीली पड़ गईं और चूंकि काम-काज बहुत थोड़ा रह गया, अतः कर्मचारियों को भी पूरा काम नहीं मिला। इससे एक बड़ा दूषित वातावरण पैदा हो गया। इसके अलावा, अगले वर्षों में सूखा के कारण खाद्यान्न की कठिनाई पैदा हो गई और दो युद्धों ने, जिनके कारण 1962 और 1965 में देश के आगे एक विषम परिस्थिति पैदा हो गई थी, विकास और जनतन्त्र की सुरक्षा के नए आयाम पैदा हुए। कार्यक्रम की प्राथमिकताएं बदलीं और जबकि सामुदायिक कार्यकर्त्ताओं से यह आशा की जाती थी कि वे अभी भी क्षेत्रों और समुदाय के समन्वित विकास में लगे रहेंगे, खाद्यान्न की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन पर जोर दिया जाने लगा। सामुदायिक विकास के रंगढंग पर इसका निर्णयात्मक प्रभाव पड़ा और इसकी प्रकृति और दिशा बदल गई।

सघन कृषि जिला कार्यक्रम 1960-70 के दशक के शुरू में ही चालू हुआ। प्रत्यक्ष रूप से इसके अच्छे नतीजे निकले। पर कार्यक्रम की सफलता इसी रूप में थी कि यह सघन कृषि क्षेत्रों में काफी बिखरे रूप में उसी तरह फैल गया था जिस तरह सामुदायिक परियोजना और सामुदायिक विकास खण्ड राष्ट्रीय प्रसार सेवा के रूप में देशभर में फैल गए थे।

1965 में अधिक उपज देनेवाली किस्मों के आने से काम का रुख बदल गया और इसका सामुदायिक विकास के राग-रंग पर प्रभाव पड़ा। इनकी सफलता से उत्पादन का तरीका बदल गया और किसानों की प्रवृत्ति में भी परिवर्तन आ गया। इसलिए हर किसान को अधिक उपज देने वाली किस्मों में ही असलियत नजर आई तथा वह भण्डारण, परिवहन, विपणन आदि सुविधाओं के न होते हुए भी इन किस्मों की पुकार करने लगा। जो किसान इन नई किस्मों को अपना सकते थे और खतरा उठा सकते थे वे पहले ही काफी खुशहाल थे और इन सफलताओं से और भी अधिक खुशहाल हो गए। इस तरह गरीब और अमीर के बीच खाई चौड़ी होती गई पर वास्तव में हरित क्रान्ति इसी से आई। यदि 1950-60 के दशक में किसान नई तकनीकों को न अपनाते तो क्या हरित क्रान्ति का आना सम्भव था?

हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप तरह-तरह की पूर्ति और सेवाओं की मांग अब इतनी ज्यादा बढ़ गई है कि उन्हें पूरा करना ग्रामसेवक और विस्तार अधिकारियों के बूते से बाहर है, लेकिन उन्हें यदि खेती की नई तकनीकें और जानकारी मिलती रहें तो वे निश्चित

रूप से ही बेहतर काम कर सकते हैं।

1960-70 के दशक में सामुदायिक विकास संगठन से कृषि के अलावा कुछ और कार्यक्रम जोड़ दिए गए। यूनिसेफ की सहायता से सामुदायिक विकास मन्त्रालय ने व्यावहारिक पोषाहार कार्यक्रम अपने हाथ में लिया और बाद में यह मन्त्रालय का एक महत्वपूर्ण काम हो गया। 1964 में ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम योजना आयोग से उठकर सामुदायिक विकास मन्त्रालय के पास आया और इससे भी सामुदायिक विकास संगठन को एक नया काम मिला। ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम का एक अतिरिक्त लाभ कृषि उत्पादकता का निर्माण करना और मौसमी बेकारों को रोजगार उपलब्ध करना था। कार्यक्रम का विषय उत्पादक और श्रम प्रधान कृषि कार्यक्रमों द्वारा सामुदायिक पूंजी और उत्पादकता का निर्माण करना था।

1966 में सामुदायिक विकास मन्त्रालय खाद्य तथा कृषि मन्त्रालय से जोड़ दिया गया। अप्रैल 1969 से सामुदायिक विकास कार्यक्रम को राज्य की योजना समझा जाने लगा है जिसके लिए राज्य सरकारों को खण्ड ऋणों और खण्ड अनुदानों के रूप में केन्द्रीय सहायता उपलब्ध की जाती है। इस दशक के अन्त में प्रशिक्षण कार्रवाइयों में ढील आई क्योंकि कुछ प्रशिक्षण संस्थान बन्द कर दिए गए और कुछों का पुनर्गठन किया गया।

पंचायती राज और सामुदायिक विकास व्यवस्था के संयुक्त हो जाने से स्थानीय विकास प्रशासन का रंग-ढंग बदल गया और यह माना गया था कि इससे जन सहयोग के अच्छे अवसर उपलब्ध होंगे और प्रशासनतन्त्र लोगों की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर चलेगा। यह भी आशा की गई थी कि आगे योजनागत बजट की जरूरत नहीं पड़ेगी और सामुदायिक विकास अपने भरोसे पर अपने आप ही चलने लगेगा। पर हमारी ये धारणाएं सही साबित नहीं हुईं। यह कार्यक्रम अभी सरकारी धन तथा पहले पर चल रहा है। जहां धन की कमी रही वहां काम ढीला पड़ गया जबकि कर्मचारियों की संख्या लगभग उतनी ही बनी रही।

परन्तु कुछ असफलताओं के बावजूद सामुदायिक विकास प्रशासन और पंचायती राज संस्थानों ने ग्रामीण विकास को नए आयाम दिए हैं और जिला प्रशासन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। विकास कार्यक्रम के समन्वित कार्यान्वयन के लिए क्षेत्रीय अभिकरण का काम सिर्फ खण्ड संगठन के ही हाथ में रहा है और स्थानीय समुदायों ने भी विकास प्रयासों में काफी योग दिया है।

चालू दौर

सामुदायिक विकास का तीसरा अर्थात् चालू दौर 1970 के दशक में शुरू हुआ और इसमें सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास पर बराबर जोर दिया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए विशेष योजनाएं तैयार की गई हैं और जनशक्ति जुटाने का एक ऐसा कार्यक्रम बनाया गया है जिससे देहातों में रोजगार के बहुत से अवसर उपलब्ध होंगे। 1971 में इस कार्यक्रम को "क्रैश प्रोग्राम" का नाम दिया गया है। आशा है कि भूमिहीन तथा खेतिहर मजदूरों को इसकी ओर आकृष्ट किया जा सकेगा। इनके अलावा, छोटे किसान और सीमान्त किसानों की जरूरतों की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है और लघु कृषक विकास अभिकरण तथा सीमान्त कृषक विकास अभिकरण इस दिशा में अच्छा प्रयास कर रहे हैं।

1950 और 1960 के दशकों में प्रगति का सूचक अंक कुल राष्ट्रीय उपज वृद्धि के आधार पर निश्चित होता था पर यही सही साबित नहीं हुआ क्योंकि खुशहाल लोगों की आर्थिक शक्ति बढ़ी है जबकि गरीब लोग विकास का उतना लाभ नहीं उठा सके हैं। पर अब हमारा उद्देश्य सिर्फ कुल राष्ट्रीय उपज बढ़ाना मात्र नहीं बल्कि बहुसंख्यक जनता की गरीबी हटाना और हर व्यक्ति के लिए राष्ट्रीय अल्पतम स्तर प्राप्त करना है। अतः कार्यक्रम का प्रयास एक साथ आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय प्राप्त करना है।

इसके अलावा, जो लोग शहरीकरण तथा औद्योगीकरण के कारण गांवों से शहरों की ओर खिसक रहे हैं उनके इस खिसकने को ध्यान में रखकर इस बात की भी जरूरत है कि विकास के प्रमुख केन्द्रों पर ऐसा ढांचा खड़ा किया जाए कि अपने प्रभाव क्षेत्रों से हटकर ग्रामीण लोग इन केन्द्रों की ओर आकृष्ट हों और ग्रामीण जीवन शहरी जीवन से समन्वित हो। 1960 के दशक के अन्त में विकास केन्द्रों में प्रायोगिक परियोजनाएं चालू करते समय ऐसी सेवाएं उपलब्ध करने की जरूरत महसूस की गई थी जिनसे ग्रामीण जीवन शहरी जीवन से समन्वित हो सके। इस तरह सामुदायिक विकास कार्यक्रम द्वारा शान्तिपूर्ण तरीकों, शिक्षा, सामुदायिक संगठन, प्रेरणा, जन सहयोग तथा लोगों की अपनी राजी से ही देश में जनतान्त्रिक समाजवाद लाया जा सकता है।

★

जब कि १० में से ८ भारतीय ग्रामीण इलाकों में रहते हैं...

तो हमारा यह कर्तव्य है कि हम उन पर अधिक ध्यान दें!

तभी तो **यूकोबैंक** ने ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर काम आरम्भ किया है। हमारा सारा ध्यान राष्ट्र की सेवा पर केन्द्रित है। कृषि और ग्रामीण विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है, क्योंकि सुदृढ़ ग्रामीण आधार का मतलब है भारत की समृद्धि। यही कारण है कि **यूकोबैंक** राष्ट्र की सम्पदा का विनियोजन कर रहे हैं ग्रामीण इलाकों में। जहाँ इसका महत्व है। जहाँ ८०% से अधिक भारतीय जनता रहती है।

यूनाइटेड कमर्शियल बैंक

आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सतत प्रयत्नशील।

UCO-8/72

लोकतन्त्र की अंधेरी-उजली गलियां

क्षितीश

प्रसिद्ध फ्रान्सीसी विचारक वाल्टेयर ने कहा था : "मैं जानता हूं कि तुम्हारी बात सच नहीं है, फिर भी तुम्हें अपनी बात कहने का हक है और तुम्हारे इस अधिकार की रक्षा के लिए मैं आजन्म संघर्ष करता रहूंगा।" मतभेद मूर्खों में ही शायद नहीं होता। मत-वैचित्र्य बुद्धिमानी की निशानी है। अंग्रेजी की कहावत : "डाक्टर्स डिफर"··· इसी बात की ओर संकेत करती है। जिस दिन संसार के सब लोग एक ही ढंग से सोचने और बोलने लग जाएंगे उस दिन समझना चाहिए कि संसार की अक्ल का दिवाला निकल गया है।

यदि कहीं मतभेद को प्रकट करने की गुंजाइश न हो तो वह जंगल राज्य होगा। निरंकुश तानाशाही के उस आलम में किसी भी समझदार व्यक्ति के लिए जीना दूभर हो जाएगा। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता सभ्य नागरिकता की सबसे पहली कसौटी है। और लोकतन्त्र की तो जान यही है।

पर यहीं एक समस्या खड़ी हो जाती है। यह मान लिया कि जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए राज्य का होना आदर्श लोकतन्त्र की व्यवस्था का प्रमुख आधार है। पर प्रश्न यह है कि जनता क्या चीज है। लोकतन्त्र या जनतन्त्र या प्रजातन्त्र जिस लोक, जन या प्रजा पर टिका है, वह लोक, जन या प्रजा कहां है? क्या वह कोई अमूर्त भाववाचक संज्ञा है, या वह कोई ठोस वस्तु है?

यह प्रश्न इसलिए पैदा होता है कि सत्तारूढ़ दल किसी भी लोकतन्त्रीय प्रणाली में जो भी कुछ करता है वह जनता के हित के नाम पर करता है और सत्तारूढ़ दल की नीतियों का विरोध करने वाले विरोधी दल जनता के हित के नाम पर ही विरोध करते हैं। तब जनता का हित किसमें है, इसका निर्णय कैसे किया जाए? कहा जा सकता है कि लोकसभा में जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले जो लोग बैठे हैं उनका बहुमत जिसका समर्थन करे उसे जनता के हित में मान लिया जाए। पर जनता के वे तथाकथित प्रतिनिधि किसी व्यक्तिगत या दलीय स्वार्थ में लिप्त नहीं होंगे, धन के प्रलोभन से खरीदे नहीं जा सकेंगे, या नेता द्वारा अनुशासनात्मक कार्रवाई की धमकी दिए जाने से भयभीत नहीं होंगे, इसकी क्या गारण्टी है?

प्रश्न फिर वहीं का वहीं आ खड़ा होता है। आखिर जनता की राय का आकलन कैसे किया जाए? क्या जनता में कोई भी दो समझदार व्यक्ति ऐसे होंगे जिनकी राय प्रत्येक विषय में शत-प्रतिशत मिलती हो। जब किसी भी विषय पर दो परस्पर विरोधी मत हों, तब किसे सही माना जाए? "सत्यमेव जयते" कह देने से काम नहीं चलता। जिस सत्य की विजय की बात कही जा रही है, वह सत्य आखिर क्या है— इसका निश्चय तो हो।

सच तो यह है कि जनतन्त्र में किसी की भी इच्छा नहीं चलती, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को एक सामान्य इच्छा के अनुसार अपनी इच्छाओं को ढालना पड़ता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही जिद पर अड़ा रहे और अपनी इच्छा, मान्यता या विश्वास को ही सर्वोपरि महत्व दे तो लोकतन्त्र नहीं चल सकता। ऐसी स्थिति में अराजकता पैदा हो जाएगी और उसकी समाप्ति एकतन्त्रीय निरंकुश शासन में ही होगी।

वाद-विवाद बुरा नहीं, बल्कि आवश्यक है। भारतीय परम्परा तो यही है कि "वादे वादे जायते तत्वबोधः"। जब दूसरे की बात को ध्यानपूर्वक सुनकर उसमें निहित सत्यांश को ग्रहण करने की उत्सुकता होगी तभी तो तत्वबोध होगा, यदि अपने ही दृष्टिकोण पर आग्रह रखा जाए तो तत्वबोध नहीं, केवल कण्ठशोष ही होगा। दूसरे के दृष्टिकोण को हृदयंगम करने के लिए संयम की आवश्यकता होती है। असंयमी व्यक्ति न अपनी

इच्छाओं पर अंकुश लगा सकता है और न इतना उदार हो सकता है कि दूसरे के दृष्टिकोण को सहन कर सके या ग्रहण कर सके।

परन्तु दूसरों की इच्छा के सामने झुकने में भी एक खतरा है। वह यह कि जो सज्जन होते हैं वे तो सदा ही अपनी बात का आग्रह छोड़कर दूसरों की बात मानने को तैयार हो जाते हैं, परन्तु दुर्जन अपना दुराग्रह कभी नहीं त्यागते। परिणाम यह होता है कि ऐसे दुराग्रही लोग ही दूसरों से अपनी बात मनवाकर समाज के अगुआ और नेता बन जाते हैं और कालान्तर में उन्हीं की तूती बोलने लगती है।

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने इस समस्या के समाधान के लिए लोकमत के परिष्कार की योजना बनाई थी। आधुनिक युग में जब यह कहा जाता है कि निरक्षर व्यक्तियों के बल पर लोकतन्त्र नहीं चल सकता, तब इसका भाव बहुत कुछ वही होता है। परन्तु केवल किताबी शिक्षा से लोकमत का परिष्कार नहीं होता। **लोकमत के परिष्कार का परिणाम यह होता है कि ऐसे सहिष्णु और संयमशील व्यक्तियों का दायरा निरन्तर बढ़ता जाता है जो स्वार्थ से ऊपर उठकर बहुजनहिताय अपनी इच्छाओं का दमन करने के लिए तैयार रहते हैं। इसके विपरीत आचरण वाले कुछ लोग होंगे भी तो वे इतने नगण्य होंगे कि समाज को अपने पीछे नहीं चला सकते।**

लोकमत परिष्कार का यह काम कौन करे? साम्यवादी देशों में यह काम राज्य के द्वारा किया जाता है। मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार अब तक स्थापित जितने भी जीवन मूल्य हैं, वे सब पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर आधारित हैं, इसलिए उन्हें बदलना होगा। उनके स्थान पर नए प्रगतिशील जीवन मूल्यों की स्थापना करनी पड़ेगी और यह राज्य कठोर अनुशासन और कठोर दण्डव्यवस्था के द्वारा करेगा। चीन ने अपने क्षेत्र में यही किया। परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि वहां सांस्कृतिक क्रान्ति के नाम से लोकमत परिष्कार की जो विधि अपनाई गई उससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता सर्वथा समाप्त हो गई और कुछ व्यक्तियों की निरंकुश तानाशाही चल निकली। यह एक नए ढंग का सामन्तवाद है जो मध्ययुगीन सामन्तवाद से भी गया बीता है। इसमें व्यक्ति का अस्तित्व ही नहीं है, केवल राज्य का अस्तित्व है, और यह राज्य भी ऐसा जो चन्द शक्तिशाली लोगों के हाथों की कठपुतली है। वे चन्द शक्तिशाली लोग जनता के हित की इतनी चिन्ता नहीं करते जितनी अपने विरोधियों को नेस्तनाबूद करने की चिन्ता करते हैं और इस काम के लिए निकृष्ट से निकृष्ट हथकण्डे अपनाने से बाज नहीं आते।

इस दवा से रोग का निवारण तो हुआ नहीं, अलबत्ता रोगी का निवारण अवश्य हो गया। अपरिष्कृत लोकमत किस ढंग का होता है, इसका उदाहरण शेक्सपीयर के "जूलियस सीजर" नामक नाटक में मिलता है। जब ब्रूटस ने जूलियस सीजर का वध कर दिया तो जनता उसके साथ हर्षोन्मत्त हो उठी। परन्तु थोड़ी देर बाद ही जब एण्टोनियो ने भाषण देकर जनता को उत्तेजित कर दिया तो वही जनता ब्रूटस का वध करने को तैयार हो गई। सचमुच 'मोबोक्रेसी' और 'आटोक्रेसी' के दो पाटों के बीच में 'डेमोक्रेसी' को जीवित रखना बहुत कठिन समस्या है।

भारतीय मनीषियों ने इस समस्या का जो समाधान किया, वह सर्वथा भिन्न है। उनका कहना है कि राज्य का काम लोकमत के अनुसार चलना है, लोकमत का परिष्कार उसके वश की बात नहीं है। **लोकमत का परिष्कार करेंगे वे वीतराग द्वन्द्वातीत संन्यासी जो राजमद, धनमद और बन्धुमद से सर्वथा दूर होंगे, जिन्हें वित्तैषणा, पुत्रैषणा या लोकैषणा अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर सकती। वे जनता के भौतिक अभ्युदय और आध्यात्मिक कल्याण की दृष्टि से ही सत्यासत्य का निर्णय करेंगे, अपने द्वेष-रहित आचरण से जनता के सामने आदर्श उपस्थित करेंगे और वे जब निष्पक्ष होकर जनहित की कोई बात करेंगे तो सब उसे स्वीकार करेंगे क्योंकि ऐसे लोगों की वाणी के पीछे उनके निजी निष्कलुष चरित्र का बल होगा।** ऐसे संयासी को किसी भी प्रकार के भय या प्रलोभन से कर्त्तव्य-विमुख नहीं किया जा सकेगा। ऐसे संन्यासी ही लोकमत परिष्कार का काम करेंगे, वे जनता को शिक्षित करेंगे और संस्कार सम्पन्न भी बनाएंगे। शिक्षा और संस्कार ही समाज में उचित जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। इन जीवन-मूल्यों से बंधी जन-भावना और लोकेच्छा की नदी कभी अपने तटों का अतिक्रमण नहीं करती। भारतीय संस्कृति की नैतिक मर्यादा यही है।

जिस संयम की ऊपर चर्चा की गई है, वह संयम भी आखिर क्या है—मर्यादाओं के अन्तर्गत किया गया कार्य ही तो। इस संयम को गलत न समझा जाए। भूखा मरना संयम नहीं है। संयम है—शरीर की आवश्यकता के अनुसार पथ्य और हितकारी भोजन उचित मात्रा में करना। इसी प्रकार बिलकुल न बोलना या सतत मौन धारण करना, यहां तक कि अत्याचारी के विरुद्ध भी जबान न खोलना और किसी जरूरतमन्द को सत्परामर्श न देना संयम नहीं है। जो न वाचाल हो, न गूंगा, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर बोलता हो, अवश्य बोलता हो और उतना बोलता हो जितना बोलना उचित हो। अपने व्यवहार का यह नियमन ही संयम है।

परन्तु व्यवहार का यह नियमन तभी सम्भव है जब व्यक्ति के मन में जनहित का आदर्श सतत विद्यमान हो और उसे अपने उत्तरदायित्व का भान हो। गैर-जिम्मेदारी और असंयम दोनों सगे भाई-बहन हैं—साथ-साथ रहते हैं। जिस राज्य के नागरिक अपनी जिम्मेदारी नहीं समझते, वहां लोकराज्य कभी सफल नहीं हो सकता। जिस राज्य के नागरिक यह समझ जाएंगे कि राज्य को चलाने की जिम्मेदारी हमारी है, वे उतने ही

संयमशील बनते जाएंगे और उतना ही लोकतन्त्र सुरक्षित होता जाएगा।

आजादी के बाद से देश की जनता के रूप में एक विचित्र परिवर्तन आया है। अब जनता प्रत्येक काम के लिए सरकार का मुंह जोहती है। जो भी काम करे, सरकार करे, जनता कुछ न करे। इससे ऐसा लगता है कि आजादी से पहले भारत की जो जनता स्वयं उपक्रम करने वाली, सरकार की इच्छा के विरुद्ध ही नहीं बल्कि सरकार का कोपभाजनबनने का खतरा मोल लेकर भी नैतिकता के उच्च से उच्च मानदण्ड स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहती थी, अब वही पराक्रमी जनता निस्तेज और पंगु हो गई है। आजादी क्या आई, जैसे उसने जनता का "इनिशियेटिव" छीन लिया। आजादी के बाद जिस प्रकार का राष्ट्रीय चरित्र हम संसार के सामने उपस्थित कर रहे हैं, क्या वह गर्व करने की वस्तु है?

स्वातन्त्र्य-संघर्ष के दिनों में जनता अनुचित कर और लगान देने से इन्कार करती थी, फिर भले ही लोगों के घर नीलाम हो जाएं, सारा सामान कुर्क हो जाए और जेल के सींकचों में बन्द होना पड़े। पर आज ऐसे लोगों की भरमार है जो करों की चोरी करना, तस्करी करना, ठगी करना, रिश्वत लेना, भ्रष्टाचार करना और दण्ड से बचना ही अपनी बुद्धिमानी की निशानी समझते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि पहले ऐसे लोग समाज में हिकारत की नजर देखे जाते थे, पर आज ऐसे लोग ही समाज में आदर पाते हैं और दिग्गजों का प्रश्रय पाकर कहीं से कहीं पहुंच जाते हैं।

पराधीनता के दिनों में हमारे समाज ने जैसी परिष्कृत रुचि और नैतिकता का परिचय दिया था, वह अब स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के इन वर्षों में कहीं दिखाई नहीं देती। डिग्रियों पर लात मारने वाले, सरकारी नौकरियों को ठुकरा देने वाले और रूखा सूखा खाने और फटा पहनने वाले, किन्तु अन्याय के आगे कभी गर्दन न झुकाने वाले लोग उस समय सुलभ थे, पर आज दुर्लभ हैं। ऐसे परिष्कृत व्यक्तित्व वाले मनस्वी उस समय स्कूल कालिजों में भी मिल जाते थे और सरकारी कर्मचारियों में भी। समाज का यही आत्मविश्वास था जो शासन की कुत्सित प्रवृत्तियों को चुनौती देता था। इस प्रकार के आत्मविश्वासी लोगों का मन ही मन सब आदर करते थे। ऐसे लोग भी उनको आदर भाव से देखते थे जो सरकारी कायदे-कानूनों से बंधकर इन मनस्वियों को जेल में डालते या उन पर लाठी प्रहार और गोलाबारी करते थे। ब्रिटिश साम्राज्य के पिट्ठू लोग भी उन मनस्वियों को प्रकाश की किरण मानकर मन ही मन उनके आगे नत-मस्तक होते थे। प्रकाश की जो किरणें पहले गली-गली में दिखाई देतीं थीं अब वे अपरिष्कृत लोकमत के घटाटोप में तिरोहित हो गईं। क्या हमारा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, सर्वप्रभुता सम्पन्न, संसार का सबसे बड़ा लोकतन्त्र, लोकतन्त्र की जड़ में ही कुठाराघात करने वाली अनैतिकता और अनुत्तरदायिता की इन अन्धेरी गलियों में ही भटकता रहेगा?

●

卐●卐

ग्रामीण विकास में नई दिशाएं············[पृष्ठ 6 का शेषांश]

ये योजनाएं लोगों को सामाजिक न्याय दिलाने के अलावा क्षेत्रीय विकास में भी सहायता देंगी ताकि देश में समैकित वृद्धि हो सके। केवल इसी तरीके से ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है और ग्रामीण जनता के सभी वर्गों को लाभ पहुचाया जा सकता है। आशा है कि सामुदायिक विकास सप्ताह मानने से ग्रामीण विकास के लिए समैकित प्रयास करने की दिशा में लोगों में फिर से विश्वास जमाया जा सकेगा। ऐसे समैकित प्रयास द्वारा सामुदायिक विकास सप्ताह में इस तरह के स्थायी कार्य किए जा सकेंगे जिनसे वे क्षेत्र विकास कार्यक्रमों का अंग बन सकें। इन सफलताओं से गांवों में विकास के विभिन्न प्रयत्नों को सामुदायिक विकास की भावना से सम्बद्ध करने का उद्देश्य प्राप्त किया जा सकेगा।

★

पुरस्कृत चित्र

सामुदायिक विकास और सहकारिता विभाग की ओर से आयोजित की गई चौथी अखिल भारतीय चित्र-प्रतियोगिता में तंजावूर जिले के श्री के० जी० नटेशन को "सड़कों के लिए निर्माण" शीर्षक चित्र पर 1,000 रु० का प्रथम पुरस्कार दिया गया।

भोपाल के श्री वामन ठाकरे को उनके "खामखेरी गांव की नारियां बच्चों में ताइता बांटते हुए" शीर्षक चित्र पर 700 रुपये का द्वितीय पुरस्कार मिला।

एक सौ रुपये का सान्त्वना पुरस्कार मानिकपुर (असम) के समाज-शिक्षा संगठक श्री भगवान प्रसाद तालुकदार को उनके चित्र "गरीबी हटाओ" पर दिया गया।

सम्मिलना पुरस्कार

भेंटकर्त्ता शक्ति त्रिवेदी

समाजीकरण में सहकारिता को धुरी बनाएं

श्री अन्नासाहब पी० शिन्दे

[सहकारी आन्दोलन की लम्बी मंजिल है। अभी उसने अपने जीवन के 25 वर्ष पूरे किए हैं। सच तो यह है कि 1904 में ही किसानों को सहकारी समितियों की मार्फत कर्जा देने के लिए ब्रिटिश हुकूमत ने सहकारी समिति का कानून बना दिया था। सहकारिता का प्रचार भी किसानों के कल्याण की दृष्टि से किया जाता था। मगर, वास्तव में 1947 के बाद इस आन्दोलन को स्वच्छन्द दिशा मिली और आवास, विपणन, ऋण, उपभोक्ता, कृषि और उद्योग सभी क्षेत्रों में बढ़ने के लिए लम्बी लम्बी मंजिलें मिल गईं।

समाजी-आर्थिक आजादी के लिए और समाजवाद की परिणति के लिए सहकार से अच्छा कोई और मार्ग नहीं है इसे गांधी जी ने पहले ही मान लिया था। उन्होंने कहा था कि 'सहकारिता में बड़ा मिठास है। साथसाथ काम करने वालों में कोई छोटा बड़ा नही है। सब बराबर हैं।" कृषि क्रान्ति के दौर में सामाजिक विषमताएं पैदा हुई है, गांवों में सामाजिक न्याय की समस्या बढ़ी है और उससे कृषि उत्पादन का भी सम्बन्ध है। इसमें भी सहकारिता खेती तथा अन्य माध्यमों से इस समस्या का समाधान खोज सकती है। इसकी चर्चा केन्द्रीय राज्य कृषि मन्त्री से एक भेंट में लेखक ने की है।

बात 20 वर्षों से देश में चल रहे सहकारी आन्दोलन ने अनेक राज्यों में गति प्राप्त की है तो कई जगह सहकारिता ने नाम का करारा शोषण भी हुआ है। सहकारी आन्दोलन के धवल वृक्ष पर लगे इन धब्बों को हटाकर हमें इस आन्दोलन को जन जन का आन्दोलन बनाना होगा, उसे एक नई दिशा देनी होगी जिससे जीवन के हर क्षेत्र में सहकारिता को अपना कर समाजवाद की सच्ची आत्मा को देश के जनमानस में प्रतिष्ठित कर सकें। ये शब्द श्री अन्ना साहेब शिन्दे ने मुझ से हुई भेंट में कहे। हमारी भेंटवार्ता का दौर इस प्रकार चला :—

प्रश्न : सहकारी आन्दोलन में अनेक धांधली और कमियां रही हैं, इसीलिए लोगों का इससे विश्वास हटा है, यह आप मानते हैं ?

उत्तर : मैं क्या, इसे सभी मानते हैं और जब तक हम अपनी गलतियों को नहीं स्वीकारेंगे तब तक इस आन्दोलन को नई दिशा नहीं मिलेगी। सहकारिता जनता का आन्दोलन नहीं बनेगा और "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" हमारा लक्ष्य भी पूरा नहीं होगा। मगर आप यह भी देखिये कि अनेक राज्यों में जहां ईमानदारी और निष्ठा से काम हुआ है, सहकारिता ने ऐसे मानदण्ड कायम किए है कि वे अन्य क्षेत्रों के लिए सफल आदर्श बन सकते हैं।

पंजाब को ही लीजिए—पंजाब में क्रय-विक्रय के क्षेत्र में 'मार्कफेड' नामक सहकारी संघ ने उच्चतम सफलता प्राप्त की है। इस संघ ने विदेशों से करोड़ों रुपये की कीमत की मशीनें आयात करके पंजाब की गेहूं क्रान्ति को सफल किया। किसानों को मौसम की मार से बचाया। कई खाद्य परिरक्षण के और खाद बनाने के कारखाने सहकारी क्षेत्र में स्थापित किए। इसके काम से देश में ही नहीं विदेशों तक में भारत के सहकारी आन्दोलन की ख्याति फैली।

प्रश्न : यह तो दरअसल आदर्श मिसाल है, इसे बहुत कम लोग जानते हैं। क्या अन्य राज्यों में भी सहकारिता ने नए आयाम स्थापित किए हैं ?

उत्तर : क्यों नहीं, महाराष्ट्र, कहने को मेरा अपना ही क्षेत्र है। मगर वहां सांगली और अहमदनगर जिलों में सहकारी समितियों ने विलक्षण कार्य किए हैं। सांगली में हरिजनों की सहकारी समिति है जिसके पास अपना ट्रैक्टर है और उसमें दलित हरिजनों ने थोड़ी सी पूंजी से अच्छे परिणाम लिए हैं। इस समिति के सदस्यों ने नई किस्मों की खेती करके भारी उपज ली है। दूसरी मिसाल मैं आपको जिले के प्राईमरी स्कूल के अध्यापकों की एक सहकारी बचत समिति की देता हूं। यह समिति थोड़े से सदस्यों से शुरू हुई थी और अब इस समिति का पूंजी एक करोड़ से अधिक है। यह हजारों गरीब अध्यापकों को कर्जा देती है। इस तरह सहकारिता के क्षेत्र में कहीं कहीं लाजवाब और बेमिसाल कार्य हुआ है।

प्रश्न : मगर लोगों का यह कहना है कि सहकारी आन्दोलन भारत में केवल सरकारी आन्दोलन बनकर रह गया है और सरकार इसमें अब तक सवा करोड़ रुपया खर्च कर चुकी है।

उत्तर : बात किसी हद तक सच भी है। अन्य देशों में सरकार जहां जहां जरूरत होती है वहां वहां सहकारी समितियों को

मदद करती है। मगर स्वीडन जैसे देश में विदेशी निर्यात से लेकर जिल्द साजों और दर्जियों तक की सहकारी समितियां सफलता से चल रही हैं, बिना सरकार की मदद के। हमारे देश में शुरू में यह सोचा गया था कि सरकार इस आन्दोलन को दिशा दे और जनता इसे अपने हाथों में थाम ले। मगर अनेक कारणों से ऐसा नहीं हो पाया और यह सरकारी सहायता वाला आन्दोलन बन गया। कैरा जैसी कुछ संस्थाओं ने सहकारिता के नाम को अलबत्ता ऊंचा रखा। गुजरात की 'अमूल' मक्खन बनाने वाली कैरा डेअरी सहकारी समिति, 'पराग' उत्तरप्रदेश क्रय-विक्रय संघ आदि कुछ ऐसे नाम हैं जो सहकारिता के क्षेत्र में आदर्श हैं।

प्रश्न : क्या आप बता सकेंगे, वे कौन से कारण थे जिनके कारण सहकारी आन्दोलन जनता का आन्दोलन न बन पाया ? क्या अब भी उसमें सुधार की कोई आशा है ?

उत्तर : वैसे तो मैं स्वयं सहकारिता विभाग को देख रहा हूं। मगर जो भी कमियां इसमें देखी गई हैं उन पर प्रकाश डालना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि सहकारिता के काम में पंचायती ढंग से काम हो, सरकारी हस्तक्षेप कम से कम हो। सहकारी संस्थाएं राजनीतिक दलबन्दी से दूर रहें, सहकारी कानून में भी यथा सम्भव परिवर्तन किये जाएं, वे आज्ञामूलक न होकर मानवता मूलक हों, सहकारी प्रबन्ध और कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था हो। सहकारी आन्दोलन महन्तों और दादागीरों के हाथ में न हो, उसमें कमजोर वर्ग का ज्यादा से ज्यादा प्रतिनिधित्व हो। इस तरह वह प्रजातन्त्री और स्वयंसेवी आन्दोलन बन सकता है। यही कारण है कि इस बार चौथी योजना में सहकारियों के विकास के लिए 265.77 करोड़ रुपये की राशि रखी गई है। इसमें 121 करोड़ रुपया केवल राज्यों में व्यय होगा।

प्रश्न : सहकारी खेती में तो काम कम ही हुआ है। दिल्ली की कई सहकारी बीज समितियां, गुजरात, महाराष्ट्र और आन्ध्र की कई सहकारी खेती समितियां अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर पाई हैं, मगर डेअरी उद्योग में गुजरात और महराष्ट्र में अच्छा काम हुआ है। चीनी सहकारी मिलों ने भी यहां सफलता प्राप्त की है, तो क्या सरकार डेअरी उद्योग को सहकारिता के क्षेत्र में बढ़ावा नहीं दे रही है ?

उत्तर : ऐसा नहीं है, अनेक स्थानों पर सहकारी खेती समितियां सफल रही हैं। कम से कम इन समितियों ने अनेक बंजर और बेकार जमीन को तोड़कर ठीक किया है, किसानों को एकत्रित करके उन्हें नए तरीकों से मशीनी खेती करने के लिए प्रेरित किया है। सामूहिक और संयुक्त खेती सहकारी समितियों के अन्तर्गत देश में 8,819 समितियों के माध्यम से 4.75 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में सहकारी खेती हो रही है जिसमें 2.41 लाख किसान सदस्य हैं।

देश में सहकारी डेअरी संघों ने भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। 1971 तक देश में 32 सहकारी दूध प्लाण्ट काम करते रहे हैं। 40 करोड़ रुपये के दूध व दूध पदार्थों का लेन देन सहकारी क्षेत्र में 1971 तक हुआ है। सभी देश भर की सहकारी दूध समितियां 144 संघों में आबद्ध है। जैसा कि मैंने कहा, महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तरप्रदेश में सहकारी दूध का काम चोटी पर है। सच पूछा जाए तो 'आपरेशन फ्लड' योजना के अन्तर्गत चौथी योजना में 142.25 लाख रुपये खर्च करके कृषि पुनर्वित्त निगम विश्व खाद्य कार्यक्रम के अधीन देश भर में सहकारी दूध योजनाओं को नवजीवन दे रहा है। हाल ही में जलगांव में भी भारतीय डेयरी आयोग के सहयोग से 1.67 करोड़ रुपये की डेअरी योजना लगाई जा रही है।

आप तो डेअरी की बात कर रहे हैं, मछली पालन सहकारी समितियों ने भी हमारे देश के कई भागों में उल्लेखनीय काम किया है। मद्रास, केरल व मैसूर में मछली विपणन में सहकारी क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई है। 1970 तक देश में 4.42 लाख मछुओं की की 4185 सहकारी समितियां थीं जो 5.04 करोड़ रुपये का मछली व्यापार करती रहीं। पांचवीं योजना में सहकारी मछली पालन के काम को 7 योजनाओं के माध्यम से 9.85 करोड़ की 567 यांत्रिक नौकाएं खरीद कर गोआ, पश्चिम बंगाल और गुजरात के समुद्र तटों पर भी बढ़ाया जा रहा है।

प्रश्न : चलिए खेती और पशु पालन की बात छोड़िए, मैं मान गया। मगर उपभोक्ता, सहकारी व्यापार, उद्योग, प्रोसेसिंग, बचत और साख तथा भण्डारण आदि क्षेत्रों में सहकारी क्षेत्र में क्या कुछ हो रहा है ? क्या इस दिशा में हमको कुछ सफलताएं मिली है ?

उत्तर : आइए पहले उपभोक्ता क्षेत्र की चर्चा करें। देश में रोजगार देने और कामगारों को शोषण से बचाने के लिए उपभोक्त भण्डार बड़ा काम कर रहे हैं। अगर हम दिल्ली के सुपर बाजार की बात न करें तो अन्य राज्यों में उपभोक्ता संघ अच्छा काम कर रहे हैं। 1971 तक देश में 3903 के लगभग उपभोक्ता समितियां थी, इनमें 17.81 लाख लोग उपभोक्ता सदस्य थे, इनकी चुकता पूंजी 175-99 लाख रुपये थी और इन की बिक्री सर्वाधिक यानी 153.36 करोड़ रुपये की रही। सबसे ज्यादा उपभोक्ता भण्डार तमिलनाडु में हैं। कुल मिलाकर इनका काम सन्तोषजनक है।

प्रश्न : मगर, सहकारी व्यापार की क्या स्थिति है ?

उत्तर : नाफेड ने निश्चय ही कुछ क्षेत्रों जैसे विदेशी निर्यात और यंत्रीकरण आयात आदि में अच्छा काम किया है। मगर उसे बराबर राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम तथा विदेश व्यापार मंत्रालय से भरपूर संरक्षण मिलता रहा है। अनेक नौकरशाही जैसी बाधाओं के बावजूद नाफेड में एक कुशल नेतृत्व रहा है और वहां 8 करोड़ रुपये तक का व्यापार 1971-72 तक सम्पन्न हुआ है। इसी वर्ष का मुनाफा

भी 25.30 लाख रुपये रहा है। अन्तर्राज्यीय व्यापार और विदेश व्यापार का काम नाफेड की मार्फत सहकारी क्षेत्र में देश भर में व्याप्त है। फिर भी उसे राज्य व्यापार निगम जैसी सुविधाएं प्राप्त नहीं है। इस दिशा में अभी काफी सुधार होना बाकी है।

प्रश्न : सहकारी प्रासेसिंग का काम भी तो कई क्षेत्रों में हो रहा है।

उत्तर : हां, देश में चीनी मिलों का राष्ट्रीय संघ है। 1971-72 में 75 के लगभग सहकारी चीनी मिलें देश में चल रही थीं और 125 को और लाइसेंस दिए गए। यानी 47 प्रतिशत चीनी उत्पादन सहकारी मिलों में होता है। मगर चौथी योजना के अन्त तक 65 प्रतिशत चीनी उद्योग सहकारी क्षेत्र में आ जाएगा। इस समय 117 चीनी सहकारी मिलों से 4.82 लाख सदस्य लाभान्वित हो रहे हैं। इनमें ज्यादातर गन्ना उत्पादक किसान ही हैं।

मार्च 1972 तक सहकारी क्षेत्र में 1744 कृषि प्रोसेसिंग यूनिट थीं। इनमें से 1200 तो बिलकुल विपणन समितियों से सम्बद्ध थीं। पशु आहार के सहकारी कारखाने भी 50 लाख रुपये की लागत से चल रहे हैं। चावल व दाल मिलें भी सहकारी क्षेत्र में काम कर रही हैं। 1971 तक 204 कपास की धुनाई व प्रौसिंग मिलें सहकारी क्षेत्र में थीं जो कि 6.25 गांठों को प्रैस करके तैयार करती हैं। मार्च 1972 तक कपास आयोग ने 28.45 करोड़ रुपये की कपास तो सीधी सहकारी समितियों से ही खरीदी। फल व तरकारियों के क्षेत्र में दो बड़े डिहाइड्रेशन के कारखाने नासिक व जयपुर में हैं। कुल 36 कारखानों में से 29 काम कर रहे हैं। जल्दी ही दिल्ली में नाफेड भी 54 लाख रुपये की लागत से सब्जी व फलों के प्रोसेसिंग का कारखाना लगा रहा है। बागानी फसलों के प्रोसेसिंग के क्षेत्र में 59 कारखाने दक्षिण भारत में चल रहे हैं। 1969-70 में सहकारी काफी समितियों ने 2.8 करोड़ रुपये की काफी तैयार की। इसी तरह चाय की समितियों ने 1.85 करोड़ रुपये की चाय तैयार की।

प्रश्न : तब तो कुल मिलाकर स्थिति उत्साहजनक है। शीत गोदाम तथा अन्य भण्डारण की क्या स्थिति है?

उत्तर : मद्रास, महाराष्ट्र, हैदराबाद, दिल्ली आदि में गोदामों की व्यवस्था हो रही है। कृषि पुनर्वित्त निगम ने गुजरात, हरियाणा, मैसूर आदि राज्यों में गोदाम बनाने के लिए 8.30 करोड़ रुपये की व्यवस्था की है। अब मैं समझता हूं मैंने 20 मिनट के समय में सहकारिता के कार्यकलापों पर काफी रोशनी डाली है। अब मैं समय की कमी के कारण क्षमा चाहूंगा।

मैंने भी उन्हें धन्यवाद देकर भेंट वार्ता समाप्त कर दी और उन्होंने अगली भेंट में सहकारिता पर और अधिक बातें बताने का वायदा किया।

तम के कौरव से लड़ते हैं

तारादत्त निर्विरोध

समता के हम प्रबल समर्थक,
अपरिग्रह वृत्ति के उन्मेषक,
सूरज के अवतार और हैं
वंशज युग के वेद व्यास के।
हम पन्थी अभिनव विकास के ॥
पंचों के जीवन की थाती,
न्याय ज्योति तो सच है बाती,
तम के कौरव से लड़ते हैं
पांचों पाण्डव नव उजास के।
हम दीपक हैं हर विकास के ॥
स्वेद और श्रम की सब माया,
उजल रही दुनिया की काया,
प्रगति और निर्माण,
योजना सब में लेखे सांस-सांस के।
हम लेखक हैं भूख-प्यास के ॥
आलोकित करते हैं अग-जग,
शान्ति पथिक के चलने का मग,
मुक्त हवा में जीवन जीते,
प्राण बंधे-से नई आस के।
हम साथी हैं मुखर हास के ॥

रेल कर्मचारियों में सहकारिता आन्दोलन

रामचन्द्र तिवारी

क्यों समाज-निर्माण में ही परस्पर सहयोग की भावना अन्तः सलिला की भांति संचारित रहती है, किन्तु सहकारिता मात्र सहयोग नहीं है। सहयोग जनकल्याणार्थ हो तभी सार्थक है। उसका एक प्रयोजन रहना चाहिए। इस प्रयोजन के साथ एक गत्यात्मकता भी रहनी चाहिए क्योंकि गति के बिना प्रयोजन की और प्रयोजन के बिना गति की सार्थकता नहीं है। दोषपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष की जो रूपरेखा बनती है या परस्पर सहयोग आधारित आन्दोलन उठता है, वह सहकारिता का मूलाधार है।

सहकारिता का प्रयोजन ही सबका अधिक-से-अधिक सुख और जीवन का सर्वतोमुखी विकास है। शोषण से मुक्ति, स्वावलम्बन तथा स्थानीय नेतृत्व की सर्जना उसके अनुषंगी उद्देश्य होते हैं। सहकारी समितियों के गठन का मुख्य उद्देश्य ही यह होता है कि सीमित तथा अल्प आय साधन वाले व्यक्तियों को ऋण तथा वे अन्य सुविधाएं सुलभ कराई जाएं, जिन्हें वे व्यक्तिशः अलग-अलग प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। इस प्रकार सहकारिता एक पद्धति एवं एक जीवन दर्शन कही जा सकती है। धनी व निर्धन के बीच बढ़ती खाई में आर्थिक रूप से दुर्बल लोगों की सहायता में उठा आन्दोलन सहकारिता है। सहकारिता बल से, दबाव से नहीं, लोगों की स्वेच्छा, सद्भावना, एवं संकल्प से प्रेरित एवं अग्रसर होने वाली चीज है।

नया नहीं

सहकारिता आन्दोलन भारत में नया नहीं, काफी अर्से से चल रहा है। स्वाधीनता से पूर्व इस आन्दोलन की गति मन्द थी। आजादी के बाद इसे नया बल मिला किन्तु इसमें वह प्राणवत्ता नहीं आ सकी जिसकी सामान्यतः आशा स्वाधीनता के बाद की गई। चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक देश के आर्थिक जीवन में सहकारिता एक ऐसा क्षेत्र नहीं बन पाई है, जो अपने आप में एक प्रबल शक्ति हो।

सहकारिता औद्योगिक उत्पादन, वितरण, कृषि-उत्पादन, ऋण व्यवस्था, कृषि उपज के विपणन से लेकर उपभोक्ता सहकारी समितियों, श्रमिक सहकारी समितियों और भवन-निर्माण सहकारी समितियों तक विस्तृत क्षेत्र को छूती है और जब यह आन्दोलन प्राणवान् बनेगा तो देश की अर्थव्यवस्था में अनेक अंगों को समेटे हुए एक ऐसी ऊर्जस्वित शक्ति होगा कि कोई उसकी उपेक्षा न कर सके।

भारतीय रेलें

भारतीय रेलें देश की अर्थव्यवस्था का एक अपरिहार्य प्रमुख अंग है। अर्थतन्त्र में उनका विशिष्ट स्थान इसी बात से प्रकट है कि इन पर काम करने वालों की संख्या—स्थायी-अस्थायी तथा रोजन्दारी मजदूरों समेत—करीब 17 लाख है। रेलों पर 4,000 करोड़ रुपये की पूंजी लगी है। देश का करीब तीन-चौथाई माल तथा अधिक-से-अधिक यात्री यातायात रेलें सम्भालती हैं। एक करोड़ लोगों का रेलों से प्रतिदिन प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष सम्पर्क होता है। रेलों की वार्षिक आय 1,000 करोड़ रुपये से अधिक बैठती है। रेलें आदर्श रोजगारदाता की भूमिका भी बखूबी

आपकी धरती के लिये बैंक ऑफ़ बड़ौदा का एक नये किस्म का 'खाद'

किसानों के लिये कृषि–ऋण

रुपया..... एक उत्तम खाद
आपकी धरती अधिक और अच्छी फसल उगाये, इसके लिये अच्छे बीज, आधुनिक साज़ सामान, सिंचाई के लिये अच्छे साधन और उत्तम खाद की जरूरत होती है... और इन सब चीजों के लिये आपको चाहिये रुपया ! आपको यह रुपया बहुत आसानी से मिल सकता है।
आप केवल इतना कीजिये कि बैंक ऑफ़ बड़ौदा आइये और हमारे कृषि-ऋण के लिये आवेदन कीजिये। हम बहुत ही सुविधाजनक शर्तों पर आपको यह ऋण देंगे।
आज ही हमारे पास आइये। हम आपको दिखायेंगे कि हमारा यह कृषि-ऋण आपकी जमीन के लिये कितना उपजाऊ है।

चिर समृद्धि का सोपान
बैंक ऑफ़ बड़ौदा
भारत तथा विदेशों – यू. के., ईस्ट अफ्रीका, मॉरीशस, फ़िजी द्वीप समूह और गियाना में कुल मिलाकर ६५० से भी अधिक शाखायें।

Shilpi BOB. 8/72 Hin.

निभाती हैं क्योंकि वे राष्ट्र का सबसे बड़ा राष्ट्रीयकृत संस्थान हैं और देश की सबसे बड़ी रोजगारदाता हैं।

परिचालन के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान होने पर भी रेलों ने कभी भी अपने को मात्र व्यावसायिक प्रतिष्ठान नहीं माना। आरम्भ में भले ही व्यापारिक लाभ की दृष्टि से उनकी स्थापना की गई किन्तु अंग्रेज शासकों ने भी उनके सामरिक महत्व को अपने ध्यान में प्रमुखत: रखा था। आज स्वाधीनता के बाद वे व्यापारिक प्रतिष्ठान कम, लोक-सेवक प्रतिष्ठान अधिक हैं।

इन सभी दृष्टियों से यह सर्वथा स्वाभाविक ही था कि रेलों ने अपने कर्मचारियों के आर्थिक हितों के रक्षण की दृष्टि से सहकारिता आन्दोलन को अधिक सुस्थिरता के साथ अपनाया है। रेलों पर यह आन्दोलन अधिक दृढ़ता के साथ जमा है। इसके लिए रेलों ने उन्हें कुछ विशेष सुविधाएं दी हैं और इस सम्बन्ध में पूरी दिलचस्पी भी ली जाती है। इसी का परिणाम है कि देश के अन्य क्षेत्रों में यह आन्दोलन जहां किसी प्रकार चलता चल रहा है, वहां रेलों पर इसने नई-नई दिशाओं में नए-नए आयाम खोजे हैं।

छः प्रकार की सहकारियां

रेलों पर छः प्रकार की सहकारी समितियां चल रही हैं—(1) सहकारी ऋण समितियां, (2) सहकारी उपभोक्ता समितियां, (3) सहकारी गृह निर्माण समितियां, (4) सहकारी माल उतार-चढ़ाई (हैंडलिंग) समितियां, (5) सहकारी खुदरा बिक्री समितियां और (6) सहकारी नागर इंजीनियरी समितियां।

इनमें से अन्तिम तीन प्रकार की सहकारी समितियां ऐसी हैं जो केवल रेलों पर ही बनाई जा सकती हैं। प्रथम तीन प्रकार की समितियां ऐसी हैं, जो अन्यत्र, अन्य विभागों में भी बनाई जानी सम्भव हैं। प्रायः सभी सरकारी विभागों में इनमें से सभी या दो-तीन समितियां बनी हुई हैं।

रियायतें

सहकारी उपभोक्ता समितियों की हिस्सा पूंजी तक में रेल प्रशासन 2,500 रुपये तक दे देता है। इसी प्रकार जिन सहकारी उपभोक्ता समितियों को संचालन पूंजी की आवश्यकता हो, उनको 10,000 रुपये तक ब्याज पर दे दिया जाता है। इन उपभोक्ता समितियों को उचित मूल्य पर माल बेचने वाले विभाग के प्रशासकीय एवं स्थापत्य कर्मचारियों के खर्चे के लिए धन दिया जाता है। यह धन इस खर्चे से आधे तक मिल सकता है और केवल तीन वर्ष तक ही मिल सकता है। समुचित ढंग से चलने वाली सहकारी समितियों को प्रथम तीन वर्षों तक प्रशासनिक एवं स्थापना सम्बन्धी खर्चों का आधा भाग तक दिया जा सकता है।

जो सहकारी समितियां उचित दर की दुकान चलाती हैं, उन्हें स्थान एक तरह से मुफ्त दिया जाता है—(केवल 1 रुपये प्रति मास तथा म्युनिसिपल कर ही लिए जाते हैं)। अन्य समितियों से अनुरक्षण खर्च तथा म्युनिसिपल कर लिए जाते हैं। सहकारी समितियों को छत्त के पंखे मुफ्त लगा कर दिए जाते हैं और पानी तथा बिजली रियायती दर पर दी जाती हैं।

इनके अलावा, सहकारी समितियों से लिए उधार की राशि, हिस्सा पूंजी या अन्यथा जमा करने के लिए धन कर्मचारियों के वेतन से काट लेने की विशेष व्यवस्था है।

ऋण समितियां

सहकारी ऋण समितियों के सम्बन्ध में रेलों का विशेष प्रयास यह है कि समितियां यथासम्भव बड़ी-से-बड़ी बनें। वैसे नीति तो यह है कि एक क्षेत्रीय रेलवे या उत्पादन कारखाने पर एक ही ऋण समिति हो किन्तु ऐतिहासिक कारणों से उनकी संख्या 26 है। कुल कर्मचारियों में 56 प्रतिशत कर्मचारी इन समितियों के सदस्य हैं जिनकी संख्या 30-6-1970 को 8,09,311 थी। उक्त तिथि को इन समितियों की हिस्सा पूंजी करीब 9 करोड़ रुपये थी और संचालन पूंजी कोई 57 करोड़ रुपये। इनकी आरक्षित पूंजी 2 करोड़ 21 लाख रुपये है। इन्होंने अपने सदस्यों को 37 करोड़ 30 लाख रुपये ऋण के रूप में दे रखे हैं। इनको 51.74 लाख रुपये का शुद्ध लाभ होता है।

रेलवे की सहकारी ऋण समितियों के विषय में मुख्य बात यही है कि देश की सबसे शुरू में बनी ऋण समितियों में भी रेलवे की सहकारी ऋण समितियां आती हैं। दूसरे, रेलवे की सहकारी ऋण समितियां बाहर से धन अधिक नहीं जुटातीं। बाहरी ऋण का प्रतिशत ढाई के आसपास है और 60 प्रतिशत धन स्वयं रेलों से जुटाया जाता है।

उपभोक्ता सहकारियां

देश में उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन बड़े ही कठिन दौर से गुजर रहा था। एक जमाना था जब ये समितियां नियन्त्रित मूल्य वाली वस्तुएं थोक विक्रेताओं से लेकर बेचती थीं। उस समय वस्तुओं की कमी तथा मूल्य नियन्त्रण के कारण बिक्री-कला के किसी अंग का प्रयोग करने की उन्हें आवश्यकता नहीं थी। वस्तु निश्चित, दाम निश्चित, वस्तु के प्रति ग्राहक का रुख निश्चित, उनकी आवश्यकता निश्चित—बस दाम लो और माल दो।

किन्तु अब नियन्त्रण हटने पर सभी प्रकार की वस्तुएं इन उपभोक्ता सहकारी दुकानों पर आने लगीं। अब इन समितियों का बिक्री कला के सभी अंगों से पाला पड़ने लगा। क्या चीज बिक्री के लिए लाएं - (वह चीज बिकेगी या नहीं), किसकी बनी हुई लाएं (उसका स्तर अच्छा होना चाहिए), ग्राहकों में उसके प्रति रुचि एवं विश्वास जगाएं। वस्तु की उत्कृष्टता से भी और अपनी सेवा से भी। वस्तु का दाम ऐसा निर्धारित करें जो बाजार से सस्ता भी हो और सहकारी समिति को भी घाटा न हो (बल्कि एक पैसा बचे ही), सहकारी उपभोक्ता भण्डार उपयुक्त स्थान पर हो तथा वहां कुशल कर्मचारी रखे जाएं जिससे न तो माल

खराब हो और न चोरी जाए। साथ ही भण्डार में उपयुक्त सफाई हो। यहां क्या क्या वस्तुएं बिक्री के लिए सुलभ हैं, इसका भी उपयुक्त प्रदर्शन हो। यानी इन उपभोक्ता भण्डारों को बाकायदा व्यापारियों की दुकानों से हर दृष्टि से प्रतियोगिता करनी पड़ती है।

उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन की मुख्य समस्या है—सहकारी समितियों का आकार छोटा होना, सदस्यों का सहकारी उपभोक्ता भण्डारों के प्रति पक्का लगाव न होना (दो पैसा सस्ती चीज कुछ समय तक व्यापारी दे तो वे सहकारी भण्डार को छोड़ देंगे भले ही कालान्तर में —उपभोक्ता भण्डार बन्द होने पर—वे ही व्यापारी उनका खाल उतार लें), राष्ट्रीय स्तर पर इस आन्दोलन के समर्थन के लिए उपयुक्त संस्थागत व्यवस्था न होना; व्यापारियों से भीषण प्रतियोगिता होना, सदस्यों का शिक्षित न होना तथा इन भण्डारों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण दे सकने की व्यवस्था न होना। बिना प्रशिक्षण के साधारण सदस्य व्यापारियों की चालों तथा बाजार की स्थितियों को देखते हुए कैसे काम कर सकते हैं ?

इन समस्याओं को देखते हुए रेलों ने उपभोक्ता भण्डारों के लिए विशेष व्यवस्था की है। आर्थिक सहायता देने के अलावा रेलवे ने सहकारी उपभोक्ता भण्डारों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने की भी विशेष व्यवस्था की है। रेलों के क्षेत्रीय प्रशिक्षण विद्यालयों में आजकल इसके लिए विशेष पाठ्यक्रम चल रहे है। उदयपुर में दो सौ और भुसावल तथा धनबाद में सौ सौ व्यक्तियों को प्रशिक्षण का प्रबन्ध है।

सहकारी उपभोक्ता भण्डारों तक व्यवसाय-पद्धतियों का ज्ञान देने के लिए सहकारिता वर्कशाप का हर रेलवे पर वर्ष में कम से कम एक बार आयोजन होता है: उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाता है, सहकारिता एवं श्रम-निरीक्षक लोगों को यह ज्ञान देते हैं तथा रेलों के कर्मचारी वर्ग अधिकारी भी उन्हें मार्ग दिखाते हैं।

30-6-70 को रेलों पर सहकारी उपभोक्ता भण्डारों की संख्या 436 थी (अब 450 के आसपास पहुंच गई है) जिनकी सदस्य संख्या 2,04,396 थी। इनकी हिस्सा पूंजी 43.81 लाख रुपये तथा कुल संचालन पूंजी 88.55 लाख रुपये थी। इन्होंने कुल 868.75 लाख रुपये का कारोबार किया और 7.73 लाख रुपये शुद्ध लाभ कमाया। इनकी आरक्षित निधि 17.25 लाख रुपये थी और इन्हें 1.63 लाख रुपये की सहायता प्रदान की गई। इन समितियों की तरफ से उचित मूल्य पर माल बेचने वाले 334 भण्डार चल रहे थे।

गृह-निर्माण समितियां

'खाना, कपड़ा और मकान' के रूप में गिनी जाने वाली 3 बुनियादी आवश्यकताओं में मकान भी एक आधारभूत आवश्यकता है। भले ही तीनों में सबसे कम प्राथमिकता वाली क्यों न हो। 'अपना घर' होती तो बड़ी सुखद कल्पना है, लेकिन इसे आज बना पाना बड़ा ही मुश्किल है। बढ़ती मंहगाई तथा सुविधाओं एवं गृहनिर्माण की नवीनतम बातों आदि के कारण 'अच्छा मकान' बना पाना बड़ा ही मुश्किल काम हो गया है।

नगरों में जमीन न होना, मंहगी जमीन होना, उनके लिए उपयुक्त बिजली, पानी, सीवर आदि की व्यवस्था न होना, आदि ऐसी बातें हैं, जिनका एक व्यक्ति अकेले सामना नहीं कर सकता। अतः सम्मिलित रूप से सहकारी समितियों के रूप में मिलकर यह समस्या सुलझाई जा सकती है। सहकारी गृह निर्माण समितियों के पीछे यही पृष्ठभूमि रहती है। रेलों पर इसी कारण से सहकारी समितियां बनी हैं।

30-6-70 को समाप्त वर्ष में रेलों पर इन सहकारी समितियों की संख्या 39 थी जिनकी सदस्यता 7½ हजार से अधिक थी। इनकी प्राप्त हिस्सा पूंजी 10 लाख रुपये से अधिक और संचालन पूंजी 1 करोड़ रुपये थी। इस समय इनकी संख्या 43 है।

रेलें प्रतिवर्ष 300 मकान बनाने की कल्पना लेकर चल रही हैं। सोचा तो यह जा रहा है कि प्रतिवर्ष एक हजार मकान बनें और उनके निर्माण में ज्यामितीय वृद्धि होती चले।

श्रमिक समितियां

निर्धन वर्ग को सहारा देने की दृष्टि से रेलों ने मजदूरों की सहकारी समितियां बनाने को बढ़ावा देने की नीति अपनाई है। रेलों से माल उतारना, माल चढ़ाना, कोयला उतारना-चढ़ाना, पार्सल उतारना-चढ़ाना, इंजिन घरों में इंजिनों से निकली राख के गड्ढे साफ करना तथा अधजला कोयला उठाना आदि अनेक काम होते हैं, जिनमें मजदूर लगते हैं। इन सब के लिए हैंडलिंग ठेकेदार काम करते थे। रेलों पर इस प्रकार के 1000 के करीब ठेकेदार हैं। रेलों ने सहकारिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 25 या अधिक श्रमिकों की सहकारी समिति बन जाने पर ये ठेके उन समितियों को देने शुरू किए हैं। 30-6-70 को समाप्त वर्ष में ऐसी सहकारी समितियों की संख्या 67 थी जो आज 120 से भी ऊपर पहुंच रही है। इन्हें पौने दो करोड़ रुपये के ठेके दिए जा चुके हैं। करीब डेढ़ सौ स्टेशनों पर ये समितियां काम कर रही हैं।

बिक्री समितियां

स्टेशनों पर चाय, फल या खाने की चीजें तथा अन्य चीजें बेचने के लिए बहुत से लोग रहते हैं। पहले इनके ठेके ठेकेदारों को दिए जाते थे। देश में 7,000 से अधिक स्टेशन हैं जिन पर 6,000 ठेकेदार थे। रेलें आज इस काम में भी सहकारी समितियों को बढ़ावा दे रही हैं। जून, 1970 में इस प्रकार की 16 समितियां 20 स्टेशनों पर काम कर रही थीं जिनकी प्राप्त पूंजी 50 हजार के आसपास थी।

साक्षरता और कृषि विकास

गुलाबचन्द जायसवाल

पिछले दो दशकों में भारत में निरक्षरता को मिटाने तथा लोकतान्त्रिक जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल लोगों को शिक्षित बनाने की दिशा में बहुत कुछ किया जा चुका है। इसके लिए परिस्थितियां भी अनुकूल रही हैं। राष्ट्रसंघ द्वारा मानव अधिकार की व्यापक घोषणा से बीस वर्ष पूर्व ही शिक्षा का अधिकार, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पिछड़े देशों की जनता के लिए स्वीकार किया जा चुका था। भारतीय संविधान की विभिन्न धाराओं तथा नीति-निदेशक सिद्धान्तों द्वारा भी हमारे देश में अनिवार्य व्यापक शिक्षा और वयस्कों की शिक्षा के सिद्धान्त को सरकार द्वारा मान्यता दी गई है।

हमारे देश में यद्यपि आर्थिक आयोजन के 20 वर्षों में साक्षरता में काफी आशाजनक वृद्धि हुई है, फिर भी आज देश के तीन में से दो व्यक्ति निरक्षर हैं। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के अनुसार साक्षरता में प्रगति की दर 1951 में 16.6 प्रतिशत, 1951 में 24 प्रतिशत और 1971 में 29.5 प्रतिशत थी। परन्तु इस अवधि में निरक्षरों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई है और वह बढ़कर 1951 में 29.80 करोड़, 1961 में 33.30 करोड़ और 1971 में 38.60 करोड़ हो गई है।

स्पष्ट है, कि आज भी हमारे देश में निरक्षरता का विकराल रूप हमारे सामने है। इससे देश में जनतान्त्रिक प्रणाली का पूरा फायदा नहीं उठाया जा रहा और आर्थिक विकास में बाधा पड़ रही है। भारत में साक्षरता का स्तर इतना गिरा हुआ है जबकि जापान, स्वीडन, इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी तथा स्विटजरलैण्ड जैसे देशों में लगभग 90 प्रतिशत साक्षर या शिक्षित हैं। भारत की अनेक विकास योजनाएं इसलिए विफल हो जाती हैं कि जिनके लाभार्थ वे बनाई गई हैं, वे उनको समझ सकने की स्थिति में नहीं हैं।

भारत में भूतपूर्व अमेरिका के राजदूत श्री चैस्टर बाउल्स के शब्दों में "जिन जापानी किसानों को सन् 1946 में महान भूमि सुधार कानून के अन्तर्गत भूमि दी गई थी, उनमें 10 में से 9 उस कानून को पढ़ सकते थे।" दुर्भाग्य से भारत के 10 में से 1 किसान भी अपने लिए बनाए गए कानूनों को पढ़कर समझने की स्थिति में नहीं है।

साक्षरता क्या है ?

1962 में यूनेस्को के साक्षरता विशेषज्ञों द्वारा निम्नलिखित परिभाषा दी गई है :

"साक्षर व्यक्ति वे हैं जिनमें वह ज्ञान तथा योग्यताएं आ गई हों, जिनकी सहायता से वह अपने समूह और समुदाय में कुशलतापूर्वक जीवन निर्वाह कर सकें तथा उन कार्यों में भलीभांति भाग ले सकें, जिनमें साक्षरता की आवश्यकता पड़ती है।"

अतः भारत में कृषि विकास हेतु किसानों में साक्षरता का होना आवश्यक है। किसानों को इस तरह से साक्षर बनाना है कि वे बिना किसी मदद के पढ़ लिख सकें तथा अधिक पैदावार की उन्नतिशील पद्धतियों को अपना सकें।

सर्वप्रथम साक्षरता के माध्यम से कृषकों को प्रशिक्षण एवं कृषि पैदावार बढ़ाने के कार्यक्रम को स्थायी बनाया जा सकता है। इसी प्रकार योजना का दूसरा महत्वपूर्ण अंग है प्रशिक्षण जिसमें व्यक्तिगत चर्चा दृश्य-श्रव्य यन्त्रों एवं साहित्य का प्रमुख स्थान है। इसके अन्तर्गत रेडियो का विशेष महत्व है।

साक्षरता क्यों

कृषि विकास एवं साग सब्जियों की पैदावार, उनके संरक्षण, अन्नोपज की रक्षा आदि के बारे में समय समय पर छपे हुए फोल्डर, पुस्तिकाएं कृषि में संलग्न किसानों को वितरित की जाती हैं। यदि वे साक्षर हैं तो स्वयं पढ़कर समझ लेते

हैं और उसी के अनुसार खेती करते हैं। यदि अनपढ़ हैं तो दूसरों की सहायता से समझना पड़ता है। यह सही है कि वे रेडियो से देहाती रेडियो गोष्ठी में खेती के बारे में समाचार, शंकाओं के समाधान तथा प्रश्नों के उत्तर आदि सुनते हैं परन्तु, कृषि अनुसन्धान परिषद् दिल्ली और राज्यों की कृषि सूचना सेवाओं द्वारा पत्रों एवं पत्रिकाओं में जो समाचार प्रकाशित होते हैं, उनको इच्छा रहते हुए कहां पढ़ पाते हैं। अतः वे उसका उपयोग कर सकें इसके लिए साक्षरता आवश्यक है। इसके अलावा, आज जबकि बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो गया है, कृषि के लिए उदारतापूर्वक ऋण आदि दिए जा रहे हैं, यदि लाभेच्छुक किसान ही, साक्षरता के अभाव में उसका लाभ न उठा पाएं तो राष्ट्र कैसे प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकेगा ?

संयुक्त राष्ट्रसंघ की अध्ययन रिपोर्ट से पता चलता है कि साक्षरता और उत्पादन वृद्धि में आपसी सह-सम्बन्ध होता है। उक्त रिपोर्ट के अनुसार जिस राष्ट्र में साक्षरता अधिक होती है, वहां उत्पादन अधिक होता है। इसके विपरीत, जहां साक्षरता कम है, वहां उत्पादन भी कम होता है।

देश में बढ़ते हुए यन्त्रीकरण एवं औद्योगीकरण के फलस्वरूप पहले की आदतों, आस्थाओं और अभिवृत्तियों द्वारा हम आज की चुनौतियों का सामना नहीं कर सकते। इसलिए श्री गुन्नार मिरडाल ने कहा है कि किसी भी देश की आर्थिक प्रगति वहां के नागरिकों की अभिवृत्तियों मान्यताओं और मूल्यों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहती।" इसी प्रकार श्री रावर्ट हील ब्रानर का भी स्पष्ट मत है कि—"आर्थिक विकास की ऊंची चढ़ाई चढ़ने के लिए एक परम्परावादी समाज को केवल धन की ही आवश्यकता नहीं होती। उससे अधिक महत्वपूर्ण है वहां के लोगों के समय, प्रतिष्ठा, धन और कार्य सम्बन्धी आदतों और मूल्यों में परिवर्तन।"

ऐसे समाज के लिए, जिसने आर्थिक समृद्धि और सामाजिक रूप को बदलने का संकल्प ले लिया है, यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने विकास कार्यक्रमों में स्वेच्छा, प्रतिबद्धता और विवेकपूर्वक हाथ बंटाने के लिए नागरिकों को शिक्षित करे। यह वहां और अधिक जरूरी है, जहां करोड़ों लोग निरक्षर हैं, या जहां की शिक्षा का विकास कार्यक्रमों की मांगों और आवश्यकताओं से कोई सरोकार नहीं है। आज नागरिकों की सुरक्षा, कल्याण और प्रगति उनकी सम्यक् शिक्षा पर अवलम्बित है। कृषक, जितना अधिक मिट्टी को समझ सकेगा, उतना ही अधिक कृषि उत्पादन में सहायक हो सकेगा।

अतः प्रत्येक राष्ट्र का यह प्राथमिक और प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह अपने नागरिकों को कम से कम व्यावहारिक रूप से साक्षर अवश्य बनाए।

कुछ वर्षों पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ के शिक्षा विज्ञान व संस्कृति संगठन (यूनेस्को) ने निरक्षरता की समस्या पर विचार करने के लिए एक विशेषज्ञों की समिति नियुक्त की थी। इस समिति ने यह सुझाव दिया था कि निरक्षरता का उन्मूलन साक्षरता द्वारा किया जाना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा का प्रसार सर्वप्रथम ऐसे वर्गों के लोगों में करना चाहिए जहां निरक्षरता उनके अधिक उत्पादन में एक बाधा बन गई हो और साक्षरता द्वारा उत्पादन में निकट भविष्य में ही अभिवृद्धि कर सकें। 1965 में तेहरान में हुए शिक्षा मन्त्रियों के सम्मेलन ने भी इस सुझाव का समर्थन किया तथा इस बात पर जोर दिया कि व्यावहारिक साक्षरता का कार्यक्रम उत्पादन से सम्बन्धित होना चाहिए।

"कोठारी शिक्षा आयोग" ने भी व्यावहारिक साक्षरता पर प्रकाश डाला है और सुझाव दिया है कि निरक्षरों में इस तरह की लगन और मनोवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिए कि वे शिक्षा की ओर अग्रसर हों। यह तभी सम्भव है जबकि शिक्षा का प्रसार ऐसे तरीकों से किया जाए जिससे निरक्षर व्यक्तियों की हालत में सुधार आए। भारत के निरक्षर एवं गरीब कृषकों के सन्दर्भ में यह बात निर्विवाद सत्य है, कि अगर उन्हें व्यावहारिक ज्ञान द्वारा शिक्षित किया जाए तो उनके

खेतों की उपज बढ़ेगी और आर्थिक स्थिति सुधरेगी।

प्रो० थ्योडोर शुल्ज तथा अन्य विशेषज्ञों ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में अध्ययन करने के पश्चात् बताया है कि शिक्षा पर व्यय करने से अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। एक रुपया या एक डालर रेल, बांध, संयन्त्र या अन्य पूंजीगत उपकरण पर व्यय करने की अपेक्षा मानव जाति के बौद्धिक सुधार पर, विनियोग करने पर, अधिक राष्ट्रीय आय बढ़ती है। किसानों और मजदूरों को निरक्षरता से बचाने का प्रयास स्वयं में एक लक्ष्य हो सकता है। परन्तु कृषि विकास के लिए साक्षरता एक आवश्यक एवं जरूरी उपाय है। दुनिया के किसी कोने में ऐसा कोई भी निरक्षर किसान नहीं मिलेगा, जो प्रगतिशील हो, और कहीं ऐसा भी नहीं मिलेगा कि जो किसान साक्षर हो परन्तु प्रगतिशील न हो। यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो शिक्षा एक बहुत ही उत्पादक किस्म का विनियोग है। केवल साक्षरता के इसी जागरण ने, जापान में कृषि सम्पन्नता और उसके बाद औद्योगिक प्रगति लाने में भारी सहायता की है।

प्रयास

केन्द्रीय सरकार के कृषि एवं खाद्य मन्त्रालय के अन्तर्गत "किसान साक्षरता योजना" विपुल पैदावार कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग है। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य, अच्छे किस्म के अधिक पैदावार देने वाले बीजों को उपयोग में लाना है। इन बीजों के लिए रासायनिक खाद का उपयोग उन्नतिशील एवं वैज्ञानिक पद्धतियों का योजनाबद्ध तरीके से अमल में लाना नितान्त आवश्यक है। इसलिए कृषकों को इन उन्नतिशील पद्धतियों को अपनाने हेतु प्रशिक्षण इस योजना की सफलता का प्रमुख अंग है। प्रशिक्षण में व्यक्तिगत चर्चा, दृश्य-श्रव्य यन्त्रों एवं साहित्य का प्रमुख उपयोग किया जाता है। योजना में रेडियो का प्रमुख स्थान रहता है क्योंकि रेडियो के माध्यम से कृषक एवं कृषि विशेषज्ञों में नजदीक का सम्पर्क, कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु किया जाता है। इसी प्रकार साक्षरता योजना का दूसरा महत्वपूर्ण अंग है। इसके माध्यम से कृषकों को प्रशिक्षण एवं कृषि पैदावार बढ़ाने के कार्यक्रम को स्थायी बनाया जा सकता है।

यह कार्यक्रम कृषि एवं खाद्य मन्त्रालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय एवं शिक्षा मन्त्रालय का संयुक्त प्रयास है। योजना का महत्वपूर्ण अंग है साक्षरता प्रसार के माध्यम से प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार करना। इससे कृषि उत्पादन में साक्षरता के महत्व का आभास मिलता है। योजना में इस बात को माना गया है कि काश्तकार को, साक्षरता में उसी परिस्थिति में दिलचस्पी एवं लगन होगी जबकि साक्षरता को कृषि में नई उन्नतिशील पद्धतियों से, जिनके द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि करना सम्भव है, सम्बद्ध किया जाए। व्यावहारिक साक्षरता, साक्षरता प्रसार में लोगों को आकर्षित करने में सफल सिद्ध होगी।

योजना के कार्यान्वयन का व्यय शिक्षा मन्त्रालय द्वारा वहन किया जाता है तथा कार्यान्वयन का भार स्थानीय राज्य शासन पर रहता है। राज्य शासन स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं से, जोकि साक्षरता प्रसार में संलग्न हैं, उक्त कार्यक्रम को कार्यान्वित करा सकता है।

कृषि विकास

जब कृषि विकास के लिए व्यावहारिक साक्षरता का प्रारूप तैयार किया जाता है, तब उसे कृषि विकास साक्षरता की योजना कहते हैं। जिस प्रकार व्यावहारिक साक्षरता का अर्थ विभिन्न कार्यों के माध्यम से साक्षरता का प्रसार है, उसी प्रकार जब कृषकों को कृषि की विभिन्न क्रियाओं द्वारा अक्षर ज्ञान कराया जाए, तब उसे कृषि विकास साक्षरता के नाम से जाना जाता है।

सर्वप्रथम उत्तरप्रदेश, पंजाब और मैसूर राज्यों के एक एक जिले में कृषि विकास साक्षरता केन्द्रों को प्रारम्भ किया गया था। धीरे धीरे यह योजना देश के अन्य राज्यों में भी प्रारम्भ की गई। 1970 के अन्त तक यह योजना 10 राज्यों के अन्तर्गत 25 जिलों में कार्यान्वित की गई। यह योजना प्रायः उन्हीं जिलों में प्रसारित की गई है, जहां गहन कृषि विकास कार्यक्रम चालू हैं। यही कारण है कि मध्यप्रदेश में भी रायपुर जिले को चुना गया था।

मध्यप्रदेश का रायपुर जिला सघन कृषि कार्यक्रम के अन्तर्गत है। किसान साक्षरता योजना के अन्तर्गत रायपुर जिले की पूर्व पृष्ठभूमि को दृष्टिगत रखते हुए चुना गया है। जिले में साक्षरता कार्यक्रम निम्न खण्डों में 1 मार्च 1969 से 30 अगस्त 1969 तक सफलतापूर्वक चलाया गया था :

विकास खण्ड	केन्द्र संख्या	प्रौढ़ संख्या
1. घरसीवां	8	240
2. अमनपुर	10	300
3. आरंग	10	300
4. कसडोल	12	360
5. मगरलोड	11	330
6. बलोदा बाजार	9	270
	60	1800

इस योजना के अन्तर्गत किसानों को पहिले 6 माह में अक्षर ज्ञान एवं साधारण गणित का ज्ञान कराया गया। इस अवधि में नवसाक्षरों के लिए तैयार किया गया विशेष साहित्य उपलब्ध कराया गया था। किसानों को रात्रिकालीन शालाओं में अध्ययन के लिए जाना पड़ता था तथा वहां विशेष प्रकार से प्रशिक्षित अध्यापक उनकी मनोवैज्ञानिक दशा के अनुकूल साक्षरता का ज्ञान कराते थे। इस अवधि में किसानों को इतना ज्ञान दे दिया था कि वे पत्र व्यवहार एवं कृषि से सम्बन्धित हिसाब आसानी से कर सकें। इस अवधि में उन्हें कृषि से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की जानकारी का अच्छा ज्ञान हो गया था।

इसके बाद दूसरा सत्र जून 1970 में चालू किया गया था जिसमें उन्हें पढ़ने लिखने का अभ्यास कराया गया तथा आवश्यकतानुसार उन्हें व्यावहारिक ज्ञान दिया गया था। यहां पर कृषि से सम्बन्धित जो व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध हुआ, उसे किसानों ने अपनी अपनी भूमि में प्रयोग किया तथा उत्पादन बढ़ाने में मदद की।

देश में इन दिनों 'हरित क्रान्ति' का प्रभाव बढ़ता जा रहा है परन्तु जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनके लिए इसका उपयोग साक्षरता के अभाव में कुछ अपरिपक्व है। अतएव यह विचार करना अधिक उपयुक्त होगा कि साक्षरता किस सीमा तक वर्तमान भारतीय कृषि पुनर्रचना को व्यापक तथा दीर्घकालीन आधार पर सुदृढ़ करने में सहायक हो सकती है।

नवीन कृषि परिवर्तन के आरम्भिक चरण का सम्बन्ध नए किस्म के अनाज के बीजों से था। अधिक पैदावार देने वाले बीजों के अलावा, उन्होंने अल्पकालीन फसलों का विकास किया है। दूसरे चरण में किसानों में उत्पादन के उन साधनों में दिलचस्पी बढ़ गई जो पहले इस तरह के नए किस्म के बीजों के अभाव में, विशेष अर्थपूर्ण नहीं थे। ये सहायक साधन सिंचाई, रासायनिक खाद और कीटनाशक औषधियां हैं। इनकी पहले से जानकारी थी पर इन साधनों के प्रति किसानों के दृष्टिकोण में क्रान्ति आ गई। अतः इस प्रकार किसानों को अधिक लाभ होने लगा।

क्या शोध, साधन, ऋण ही भारत के पांच लाख ग्रामों में लम्बी अवधि तक इस परिवर्तन को जारी रख सकते हैं? क्या नई तकनीकों, नए साधनों और नए ऋणों के समुचित लाभ इस देश के 6 करोड़ किसानों को, बिना साक्षरता के, सुलभ किए जा सकते हैं? अभी तक वैज्ञानिकों और कार्यक्रम नियोजकों का यह विश्वास है, कि प्रौढ़ शिक्षा जिसमें साक्षरता भी शामिल है, सहायक हो सकती है, पर नई कृषि कार्य योजना के लिए आवश्यक नहीं है। सरकार सहूलियतें बांटती है। उन्हें खेती के नए उपकरणों की जानकारी देती है। खाद, बीज वगैरह की सहायता भी देती है, लेकिन इसका लाभ पढ़ा लिखा आदमी ही ज्यादातर उठा पाता है। अनपढ़ होने के कारण वह विशेष लाभ नहीं उठा पाता। आजकल किसानों का सूचना, विचार विमर्श, दिशा दर्शन के लिए अपना कोई संगठन नहीं है। देश में उनके हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई दल नहीं है। अतः परिणाम स्पष्ट है कि कृषि क्रान्ति बिना किसी संस्थागत आधार के अधिक समय तक नहीं चल सकती।

सामुदायिक विकास के ढांचे से उम्मीद थी कि वह लक्ष्य की पूर्ति करता, उस पर व्यावसायिक स्तर पर सघन कृषि संगठन कार्य का भरोसा नहीं किया जा सकता। आखिर किसानों के लिए इस प्रकार का संगठन कैसे बन सकता है? इसका उत्तर केवल 'साक्षरता' हो सकता है। कृषि तकनीकों का तेजी से विकास हो रहा है ऐसी स्थिति में अनपढ़ किसानों के लिए साक्षरता बुनियादी जरूरत है। इसके लिए अपने आधार, अपनी संस्था होने से, समता के साथ विचार विमर्श और स्व-अध्ययन कर सकें। यदि ऐसा नहीं होता है, तो 'हरित क्रान्ति' दिशाहीन हो जाएगी। अतः "हरित क्रान्ति" की सफलता बहुत कुछ साक्षरता पर निर्भर करती है।

भारत गांवों का देश है। गांवों में रहने वाले किसान अधिकतर अनपढ़ हैं। उन्हें खेती-बाड़ी, खाद, सिंचाई, ऋण सुविधाएं आदि के सम्बन्ध में जानकारी, केवल साक्षर बनाकर ही दी जा सकती है। गांधी विचारधारा के अनुसार, विकास का मूल मनुष्य है, इसलिए मनुष्य शक्ति को पूरा काम में लाना चाहिए। शीघ्र उत्पादन देने वाली योजनाओं की आवश्यकता को देखते हुए, यह काम "किसान साक्षरता" से सम्भव हो सकता है। इसी से देश की भुखमरी गरीबी तथा बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है। अतः विकास की गति को तीव्र करने के लिए कृषि क्षेत्र पर अधिक ध्यान देना चाहिए। मानव-धन को यदि साक्षर बना कर प्रमुख रूप से कृषि में लगा दिया जाए, तो योजना के अनुमानित उत्पादन से कहीं अधिक उत्पादन हो सकता है।

एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

परिवार नियोजन कार्यक्रम

विपिनचन्द्र उप्रेती

आज प्राय: विश्व का प्रत्येक राष्ट्र जनसंख्या वृद्धि के भयंकर परिणामों को भुगत रहा है। 19 वीं शती के अन्त में जब प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो० माल्थस की पुस्तक "जनसंख्या पर निबन्ध" प्रकाशित हुई थी उसी समय से इस बात की चेतावनी मिलनी आरम्भ हो गई थी कि जनसंख्या में वृद्धि बड़ी तीव्र गति से हो रही है। यदि इसे रोका नहीं गया तो इसके परिणाम बहुत ही बुरे होंगे। केवल माल्थस ही नहीं वरन् समय समय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों, माइकेवेली, केन्टीलन, बेकन, स्टुअर्ट आदि ने जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न होने वाले कुपरिणामों की ओर इंगित किया है। उदाहरण के तौर पर यदि हम भारत को लें तो ज्ञात होता है कि जहां यह क्षेत्रफल में विश्व का केवल 2.5 प्रतिशत है वहां यह विश्व की जनसंख्या का 15 प्रतिशत अपने आप में संजोए हुए है पर देखिए किस तीव्र गति से इसकी जनसंख्या में वृद्धि हो रही है और इसके साक्षी हैं आंकड़े।

जनगणना वर्ष	जनसंख्या करोड़ों में (वर्तमान क्षेत्रफल के अनुसार समायोजित)	वृद्धि तथा कमी	प्रतिशत विचलन पूर्ववर्ती दशकों में
1891	23.67	—	—
1901	23.63	0.04	0.20
1911	25.21	1.59	5.73
1921	25.14	0 07	0.31
1931	27.90	2.76	11.01
1941	31.67	3.77	14.22
1951	36.11	4.44	13.31
1961	43.92	7.81	21.50
1971	54.79	10.67	24.66

उपर्युक्त आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि 1891 से 1921 के बीच जनसंख्या में वृद्धि 1.5 करोड़ की हुई तथा अगले तीस वर्षों में (1921-1951) में यह वृद्धि 11.0 करोड़ की थी जो पूर्ववर्ती दशक से 39 प्रतिशत अधिक थी जबकि इन तीस वर्षों की अवधि में खेती योग्य भूमि में केवल 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा जिसके कारण भूमि पर जनसंख्या का दबाव निरन्तर बढ़ता ही गया। प्रथम तीस वर्षों में जनसंख्या में इतनी कम वृद्धि अकाल व महामारी तथा प्रथम विश्व युद्ध में हुए नरसंहार के कारण थी। परन्तु 1921 से 1951 के बीच के दशकों में जनसंख्या में जो तीव्र वृद्धि हुई उससे स्वातन्त्र्योत्तर काल में होने वाले विकास कार्यों में बड़ी बाधा उत्पन्न हुई। प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि राष्ट्रीय आय में वृद्धि की अपेक्षा आधी हुई।

जनसंख्या वृद्धि ने नियोजित आर्थिक विकास में हुए लाभ का आधा अंश स्वयं खा लिया। 1971 की जनगणना के अनुसार यदि हम जनसंख्या पर दृष्टिपात करें तो हमें अपने सामाजिक व आर्थिक जीवन के प्रतिबिम्ब की झलक मिल जाती। अनुमान है कि यदि इसी दर से जनसंख्या में वृद्धि बनी रही तो 2000 ई० तक भारत की आबादी 100 करोड़ हो जाएगी और तब सोचिए स्थिति क्या होगी। इस समय जनसंख्या में वृद्धि दर 2.5 प्रतिवर्ष है जो कि अन्य राष्ट्रों के मुकाबले में काफी ऊंची है। जनसंख्या में इतनी वृद्धि का एक मुख्य कारण यह है कि मृत्यु दर जो कि 1921 में 48.6 प्रति हजार थी वह घटकर तो 25 प्रति हजार रह गई परन्तु जन्म दर 48 से घटकर केवल 37.7 प्रति हजार ही हो पाई। मलेरिया, प्लेग, चेचक आदि महामारियों पर तो हमने काफी हद तक काबू पा लिया परन्तु स्त्री की प्रजनन दर पर अभी तक हम कोई काबू नहीं कर पाए। जन्म दर में कमी न आने के कई सामाजिक व आर्थिक कारण हैं। उदाहरणस्वरूप अल्पायु में विवाह, धार्मिक व सामाजिक अन्धविश्वास, संयुक्त परिवार प्रथा तथा इनके अतिरिक्त आर्थिक कारण जैसे निर्धनता, निम्न जीवन स्तर, निरक्षरता इत्यादि। 1971 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या में शिक्षा

देश की रक्षा और विकास में भाग लीजिये

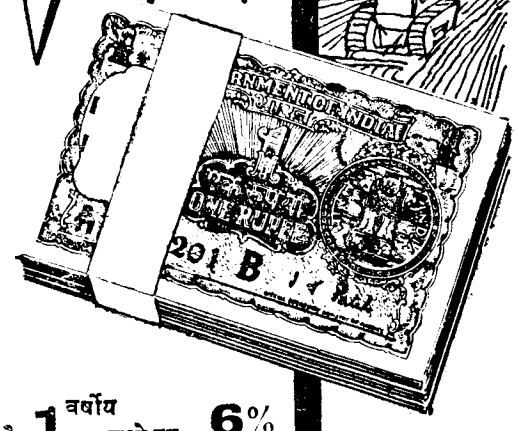

साथ ही
5-वर्षीय
डाकघर सावधि जमाखाते पर

7 1/4 %

ब्याज

कमाइये

3 वर्षीय जमाखाते पर... 7% और 1 वर्षीय जमाखाते पर... 6%

वर्ष में 3,000 रुपये तक कमाये गये ब्याज जिसमें अन्य करयोग्य प्रतिभूतियों और जमाखातों पर कमाया ब्याज शामिल है, पर आयकर नहीं लगता।

राष्ट्रीय
बचत संगठन

ब्योरे के लिये समीप के डाकघर अथवा अपने जिले के जिला प्रबन्धक, राष्ट्रीय बचत, से सम्पर्क कीजिये।

davp 72/ 212

का प्रतिशत 29.34 है जिसमें पुरुषों का प्रतिशत 39.51 तथा स्त्रियों का प्रतिशत 18.44 है जो कि आर्थिक दृष्टि से समृद्धिशाली देशों के मुकाबले बहुत ही कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में जहां भारत की जनसंख्या का ८० प्रतिशत भाग निवास करता है वहां शिक्षितों का प्रतिशत बहुत ही कम है, विशेषतया स्त्रियों में यह केवल 5 प्रतिशत ही है।

जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप आज आर्थिक दृष्टिकोण से हमें भारी कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ रहा है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय में उसी अनुपात से वृद्धि नहीं हो रही है। खाद्य समस्या विकट रूप धारण कर रही है। एक ही बार हरित क्रान्ति आ जाने से ही खाद्य समस्या हल नहीं हो सकती। आज उत्पादन में हुई वृद्धि का अंश जनसंख्या में हुई वृद्धि के समक्ष नगण्य प्रतीत होता है। भारत में इस समय खाद्य पदार्थों का कुल उत्पादन 700 लाख टन वार्षिक है जबकि यह अनुमान किया जाता है कि 1975-76 में खाद्य पदार्थों की मांग 15.20 लाख मीट्रिक टन हो जाएगी। आज इस जनसंख्या में वृद्धि होने के फलस्वरूप अनुत्पादक वर्ग (15 वर्ष से कम तथा 60 वर्ष से ऊपर) की संख्या निरन्तर बढ़ती है जो कि देश के लिए भार स्वरूप है क्योंकि देश में उत्पादन में उनका अंशदान नगण्य है। आज बेरोजगारी की समस्या निरन्तर हमारे सामने आ रही है। इन सभी उपर्युक्त कारणों से छुटकारा पाकर देश को समृद्धिशाली बनाना है तो निश्चित ही हमें जनसंख्या वृद्धि में रोक लगानी पड़ेगी। विश्व बैंक के भूतपूर्व अध्यक्ष ने संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के समक्ष कहा था "आर्थिक विकास की दृष्टि से मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि आने वाले कुछ वर्षों में आज के विकासशील देशों में सबसे शक्तिशाली देश वे होंगे जो इस समस्या को प्रभावपूर्ण ढंग से हल कर सकेंगे।"

अब प्रश्न उठता है कि राष्ट्रीय समस्या को सुचारु रूप से हल करने के लिए हमारी सरकार ने क्या क्या कार्य किए। क्या सरकार की नीति कार्य रूप में परिणित होकर कुछ ठोस फल प्रदान कर सकी है? प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में राष्ट्रीय सरकार ने परिवार नियोजन कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर आरम्भ किया। इस सारे कार्य का केन्द्र सेन्ट्रल फेमिली प्लानिंग बोर्ड था तथा इसका अनुसन्धान केन्द्र बम्बई में खोला गया। इसके चार भाग हैं: प्रशिक्षण, सेवा, शिक्षा तथा अन्वेषण। जम्मू तथा कश्मीर के अलावा लगभग सभी राज्यों में परिवार नियोजन बोर्ड कार्य कर रहे हैं। बम्बई में परिवार नियोजन तथा अनुसन्धान केन्द्र, मैसूर में रामनगरम का परिवार नियोजन प्रशिक्षण, प्रदर्शन तथा परीक्षण केन्द्र तथा कलकत्ता में आल इण्डिया इंस्टीट्यूट आफ हाइजीन एण्ड पब्लिक हैल्थ में परिवार नियोजन की पद्धति के विषय में प्रशिक्षण दिया जाता है। गर्भ निरोधक औषधियों और उपायों के सम्बन्ध में इण्डियन कैंसर रिसर्च सेन्टर बम्बई, आल इण्डिया इन्स्टीट्यूट आफ हाईजेन एण्ड पब्लिक हैल्थ, कलकत्ता तथा इन्स्टीट्यूट आफ पोस्ट ग्रेजुएट मेडिकल एजूकेशन एण्ड, रिसर्च कलकत्ता, कार्यरत हैं। तीन राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं के अतिरिक्त राज्यों में 27 प्रादेशिक परिवार नियोजन केन्द्रों की स्थापना की गई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में देश में शहरी क्षेत्रों में 21 अस्पताल खोले गए थे। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकारों ने भी परिवार नियोजन कार्यक्रम को सुदृढ़ रूप से चलाने के लिए 205 क्लिनिक खोले। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन पर 491 लाख रुपया व्यय करने की व्यवस्था थी जिनमें से परिवार नियोजन क्लिनिकों पर 273.25 लाख रुपये, प्रशिक्षण पर 15.95 लाख रुपये, शिक्षा पर 50 लाख रुपये तथा अनुसन्धान पर 50 लाख रुपये तथा केन्द्रीय संगठन पर 8 लाख रुपये खर्च किए जाने थे। परन्तु 2.3 करोड़ रुपये ही केवल व्यय किए जा सके। इस अवधि में सरकार ने 2500 क्लिनिक, 500 शहरी क्षेत्रों में तथा 2000 ग्रामीण क्षेत्रों में, खोलने का निश्चय किया था। भारत-1967 के अनुसार 1966 के अन्त तक 13,485 क्लिनिक गांवों तथा शहरों में खोले गए थे। तृतीय पंचवर्षीय योजना में लगभग 26 करोड़ रुपये व्यय किए गए थे। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में सरकार ने परिवार नियोजन कार्यक्रम में व्यय हेतु 300 करोड़ रुपये स्वीकृत किए हैं। बड़े हर्ष का विषय है कि राष्ट्रीय सरकार ने इस कार्यक्रम हेतु विदेशों की सहानुभूति प्राप्त कर उनसे सहायता भी प्राप्त की है। इस समय संयुक्त राष्ट्र संघ के अतिरिक्त, अमेरिका, स्वीडन, जापान तथा कई अन्य राष्ट्रों से सहायता मिल रही है। अमरीकी सरकार तथा स्वीडन सरकार ने क्रमशः परिवार नियोजन कार्यक्रम हेतु 3 करोड़ डालर तथा 22 लाख डालर दिए हैं। इसके अतिरिक्त, सामग्रियों के तौर पर एम्बुलैंस तथा अन्य उपयोगी सामान भी दिया है।

अब देखना यह है कि क्या इतना खर्च करने तथा विदेशी सहायता की प्राप्ति के बावजूद हम जनसंख्या की वृद्धि रोकने में कुछ सफलता प्राप्त कर पाए हैं? 1971 की जनगणना को दृष्टि में रखते हुए परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता में हमें सन्देह होने लगता है। इसका मुख्य कारण है जनसंख्या में उसी तीव्र दर से वृद्धि। 15 मई 1972 तक देश में लगभग 2.14 करोड़ लोगों की नसबन्दी हुई, 0.46 करोड़ लूप लगाए गए तथा देश में इस अवधि तक 2.2 करोड़ लोगों ने निरोधों का प्रयोग किया। परिवार नियोजन कार्यक्रम हेतु 13,485 डाक्टर प्रशिक्षित किए गए और प्रतिवर्ष लगभग 30 करोड़ कन्डोम वितरित किए गए। केवल आंकड़ों को ही प्रदर्शित करने से परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। नसबन्दी शिविरों में

उन लोगों की भी नसबन्दी की जाती है जो वृद्ध हो चुके हैं। गांवों में प्रायः जो शिविर लगाए जाते हैं उनमें प्रायः लेखपालों, पटवारियों या उन लोगों को जिम्मेदारी सौंप दी जाती है जो परिवार नियोजन में दिलचस्पी नहीं रखते। सोचने की बात है कि जब तक व्यक्ति को परिवार नियोजन कराने के कारण तथा उससे होने वाले लाभ से अवगत नहीं कराया जाएगा तब तक यह असम्भव ही है कि वह परिवार नियोजन को अमल में लाए। केवल 10 रुपये मात्र देने से ही यह कार्य सम्भव नहीं। पहले हमें अपनी ग्रामीण जनता को शिक्षित करना होगा। पैसा देने मात्र से ही कोई कार्य सफल नहीं हो जाता। दूसरी बात जो समझ में नहीं आती वह है धर्म को रास्ते में लाना। प्रजातान्त्रिक प्रणाली को अपनाते हुए क्या यह उचित है कि किसी एक मजहब वाले व्यक्ति के लिए तो केवल एक बीवी रखने का विधान हो और किसी अन्य मजहब वाले के लिए यह विधान हो कि वह चाहे जितनी बीवी रख ले। इस सम्बन्ध में सभी धर्मावलम्बियों के लिए एक जैसी व्यवस्था होनी चाहिए। आज राष्ट्र में जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए शिक्षा का अत्यधिक मात्रा में प्रचार तथा जीवन स्तर को उच्च करना होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि एक बार जब मनुष्य उच्च जीवन स्तर का आनन्द ले लेता है तो वह अधिक बच्चे उत्पन्न कर उस आनन्द को खोना नहीं चाहता। बड़े हर्ष का विषय है कि सरकार ने 1 अप्रैल, 1972 से उदार गर्भपात कानून लागू कर दिया है पर इसे और उदार बनाना होगा। पिछले वर्ष के अनुमानों के अनुसार 40 लाख स्त्रियों को प्रतिवर्ष गर्भपात कराना पड़ता है। आज हमें जनसंख्या में वृद्धि की दर को कम करने के लिए जापान का उदाहरण लेना चाहिए जिसने केवल 10 वर्ष के अन्दर ही अपनी जनसंख्या में वृद्धि की दर आधी कर दी। आज वह एशिया के देशों में सबसे विकसित राष्ट्र है। भारत में प्रत्येक बात केवल कानूनों के ग्रन्थों में ही समाविष्ट रहती है। जैसे 1929 का शारदा एक्ट। आज केवल राष्ट्र का नहीं वरन् प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि जनसंख्या वृद्धि में कमी करने में अपना पूरा सहयोग दे। इसमें अपना तथा देश दोनों का हित है।

★卐★

जिस प्रकार हमारे शरीर के विभिन्न अवयवों के बीच पूर्णतया सहकारिता है, सामाजिक सम्बन्धों में भी उसी प्रकार की परिपूर्ण व्यवस्था विकसित होनी चाहिए। वह इसलिए कि गठन और संगठन के वे ही सिद्धान्त जो प्रकृति को नियन्त्रित करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के शरीर के और सारी दुनिया के भी हैं। पर दुनिया बड़ी लम्बी-चौड़ी और विस्तृत है; अतः उसके गठन और संगठन की प्रकृति को पूर्णतया समझना कठिन है। फिर, इसके निर्माता को जानना और उसको समझना तो और भी मुश्किल काम है। तब उसको जानने और समझने का एकमात्र सरल उपाय है उसे वैयक्तिक अस्तित्व में देखना। इसे ही आध्यात्मिकता कहते हैं और यही सर्वोदय का मूलाधार।

—विनोबा

सिंडीकेट बैंक

प्रगति-सूचक

स्वाधीनता के 25 वर्ष

सूचक	1947 में स्थिति	जून 1972 में स्थिति
जमा (करोड़ रु० में)	3.33	235.28
अग्रिम (करोड़ रु० में)	1.89	168.27
शाखाओं की संख्या	78	536
संपदा का योग (करोड़ रु० में)	4.73	266.95
कर्मचारियों की संख्या	350	8624
पूंजी (करोड़ रु० में)	0.22	1.42
कुल चालू आमदनी (करोड़ रु० में)	0.18	16.89

सिंडीकेट बैंक

प्रधान कार्यालय : मनीपाल (मैसूर राज्य)

शाखाएं — **530 से भी अधिक**

के० के० पाइ — **अभिरक्षक**

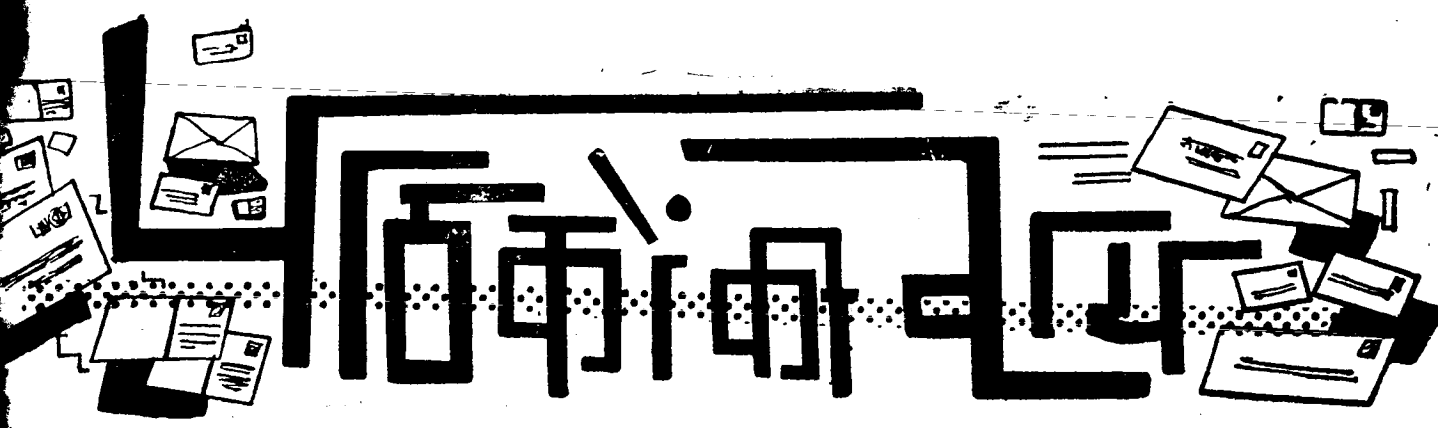

श्री गिरि की बस्ती योजना पर चुप्पी क्यों ? ★ ज्ञानेन्द्र प्रसाद जैन

गरीबी हमारे गांवों की भयंकर बीमारी है। इस बारे में सब राजनैतिक दल और बुद्धिजीवी एकमत हैं। इस बात पर भी वे एकमत हैं कि देश को बचाना है तो गरीबी दूर करनी चाहिए, पर उनकी राय इस बारे में अलग अलग है कि बीमारी कैसे दूर की जाए।

इस समय सबसे अधिक चर्चा भूमि-सुधारों की है। जोत सीमा लागू कर बड़े किसानों से खेती-योग्य जमीनें ले ली जाएं और भूमिहीन गरीब किसानों को दे दी जाएं इस सन्दर्भ में राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने देश के सामने एक योजना रखी है जिस पर हमें ताज्जुब है कि अब तक न तो सरकार के किसी वरिष्ठ मन्त्री और न किसी वरिष्ठ नेता ने टिप्पणी की है और न अखबारों के सम्पादकीय कालमों में इसकी चर्चा हुई है। यह चुप्पी क्यों ?

योजना यह है कि भूमि-सुधार लागू हो जाने पर जोत-सीमा से अधिक वाली जमीन एक-एक, दो-दो एकड़ के टुकड़ों में भूमिहीन परिवारों को न दी जाएं, बल्कि 1,200-1,200 एकड़ के फार्म बना कर हर चक पर 200 भूमिहीन परिवार बसा दिए जाएं। भूमिहीनों के पास उन्नत खेती के साधन नहीं होंगे, इसलिए शुरू में सरकार ही धरती को संवारे, और कृषि के यन्त्र खरीद कर दे, गांवों से शहरों को मिलाने वाली सड़कें बनाए और गरीब भूमिहीनों के लिए कच्चे-पक्के मकान बनाए। शुरू में भूमिहीनों पर अपने दो हाथों से मेहनत करने के अलावा और कोई जिम्मेदारी न हो।

जब फार्म लाभ देने लगे तब समूची जिम्मेदारी सदस्यों की निर्वाचित समिति को सौंप दी जाए और समिति हर साल के लाभ से थोड़ा-थोड़ा कर फार्म पर लगी सरकार की पूंजी लौटा दे और आगे उस पर बसे परिवार उन्नत खेती कर लाभ कमाएं और आपस में बांट लें।

इस योजना का आधार यह डर है कि भूमिहीन किसान हाथ-हाथ भर धरती को बेच देंगे या बिक्री पर कानूनी रोक हुई तो गांव के किसी 'बड़े' को शामिल कर उसके बटाईदार बन जाएंगे। तब उनकी हालत आज जैसी ही हो जाएगी।

यदि श्री गिरि की योजना पर भरपूर अमल हुआ तो भूमिहीन परिवारों को जमीन मिलेगी और साथ ही साधन भी मिलेंगे जिससे वे अपनी मेहनत का मीठा फल जल्दी भोगने लगेंगे और उन्हें किसी के आगे हाथ पसारने की जरूरत नहीं रहेगी।

इस योजना का विरोध भूमि-सुधार के कुछ कट्टर समर्थक भी करते हैं। उनका कहना है कि ऐसी सहकारी बस्तियों में शामिल हुए परिवार फार्म की धरती को अपनी न समझ सकेंगे। उन्हें वह खुशी नहीं होगी जो हाथ भर जमीन निजी नाम में होने से मिलती है, इसलिए सहकारी बस्ती में वे लगन और मेहनत से काम नहीं करेंगे।

हम इस दलील को बिलकुल लचर मानते हैं, क्योंकि जहां हर व्यक्ति निजी जमीन, मकान व सम्पत्ति चाहता है, उसे असली खुशी उस सम्पत्ति से लाभ कमाने में होती है। सिर्फ मिल्कियत के कागजों को उठाए फिरने से नहीं। यदि मिल्कियत से सूखी रोटी न मिले और सहकारी बस्ती में गरीब को चुपड़ी और भरपेट मिल जाए तो कौन होगा जो मिल्कियत के पीछे चुपड़ी गंवाना चाहेगा, बशर्ते उसे यकीन हो जाए कि उसके साथ बेईमानी नहीं की जाएगी, हिसाब साफ रखा जाएगा और लाभांश उसे ठीक-ठीक मिलेगा।

निजी जमीन से चिपके रहने का बड़ा कारण यह है कि आज गांव के गरीब बेसहारा किसान को न तो अपने पड़ौसी का भरोसा रहा और न अधिकारी-कर्मचारी का। इसलिए वह निजी जमीन चाहता है जो सरकारी कागजों में उसके नाम लिखी हो जिसका उसके बेटे-पोते भी इस्तेमाल कर सकें, पर यदि वह सहकारी बस्ती का लाभ अपनी आंखों से देखे और उसे सहकारी समाज के बुनियादी उसूलों का ज्ञान भी कराया जाए तो हमें विश्वास है उसे बात का मर्म समझने में

बहुत देर नहीं लगेगी।

निजी मिल्कियत में परिवार के सब लोगों को काम धन्धा मिलने की भी कम गुंजाइश है, जबकि सहकारी बस्ती में खेती के अलावा अन्य उद्योग लगाकर बस्ती के हर सदस्य को काम देने की क्षमता है।

हमारा व्यक्तिगत अनुभव है। एक गांव में गांव समाज की 150 एकड़ जमीन 3-3 एकड़ हर भूमिहीन परिवार को दे दी गई। जमीन पाकर भूमिहीन 'जमीदार' बन गए और कुछ दिन बहुत खुश रहे, पर धरती से अधिक मिला नहीं, क्योंकि पास साधन नहीं थे। कुछ ने जल्दी ही बड़े किसानों की पत्ती डाल ली और उनसे हल-बैल और बीज लेकर उनकी बटाईदारी करने लगे। क्या यही देश की गरीबी को मिटाने का इलाज है?

आज के बदलते युग में व्यक्तिगत लाभ ही एकमात्र कसौटी नहीं होनी चाहिए। सामाजिक साधनों का भरपूर इस्तेमाल हो और उनका सबको लाभ मिले, यह बात भी बहुत महत्वपूर्ण है।

सहकारी बस्तियों का विरोध न सिर्फ नेता करते हैं, पर और बड़े बड़े भी जोर-शोर से करते हैं। पर उनकी बात हमारी समझ में आती है, क्योंकि एक-दूसरे को लड़ा कर उनकी जुगाड़ बैठेगी और वे सहकारी बस्ती में 'बन्दर बांट' नहीं कर पाएंगे। उनका घर तो अलग-अलग किसान को लूटने से ही भरता है। वे क्यों सहकारी बस्ती पसन्द करने लगे?

हमारी राय में राष्ट्रपति श्री गिरि की योजना के मातहत 5-10 प्रोजेक्ट चलाए जाएं और उनके नतीजे देखे जाएं। पर शर्त यह है कि इन बस्तियों से सम्बन्धित ऐसे व्यक्ति हों जिनकी इस योजना में भरपूर आस्था हो। रस्मी वफादारी दिखाने वालों से काम नहीं बनेगा।

"वर्जित देश तिब्बत में"—मूल लेखक : लावेल थामस जूनियर ; अनुवादक : रामदत्त पंत ; मूल्य : साढ़े सात रुपये ; प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।

"सस्ता साहित्य मण्डल" ने समय-समय पर उपयोगी और मनोरंजक यात्रा-पुस्तकें प्रकाशित की हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी उसी कड़ी में एक उत्तम रचना है। मूल पुस्तक "आउट आफ दिस वर्ल्ड टू फारबिडन तिब्बत" नाम से इंगलिश में स्वयं यात्री लावेल थामस जूनियर ने लिखी है। हिन्दी में इसका अनुवाद रामदत्त पंत ने "वर्जित प्रदेश तिब्बत में" नाम से किया है। इस कठिन यात्रा में पिता पुत्र दोनों ही साथ थे। सर्वप्रथम तिब्बत-यात्रा के लिए प्रवेश-पत्र ही कितनी कठिनाई से मिला। उसके बाद यात्रा में काम आने वाली कितनी ही आवश्यक वस्तुओं का संग्रह, सामान ले जाने के लिए मजदूर, दुभाषिया, घोड़े-खच्चर आदि का प्रबन्ध करना ही एक बड़ी समस्या थी। इस प्रबन्ध के बाद मार्ग में आने वाली कठिनाइयां तो दिल को दहला देती हैं।

लेखक ने मार्ग में पड़ने वाली नदियों, घाटियों तथा दर्रों का बहुत विस्मयकारी वर्णन किया है। अनेक कष्ट-कठिनाइयां उठाकर पिता-पुत्र तिब्बत में प्रवेश करते हैं। वहां पहुंच कर वहां के अद्भुत रीति-रिवाज रहन-सहन के ढंग, आदि देखकर विकसित देश के निवासी आश्चर्य-चकित रह जाते हैं।

यात्रा की कठिनाइयों को पार कर पिता-पुत्र किस प्रकार ल्हासा में पहुंचते हैं, यह वृत्तान्त पठनीय है। ल्हासा की जलवायु का शरीर पर कैसा प्रभाव पड़ता है और उस अत्यन्त ठण्डे प्रदेश में जन-जीवन कैसे चलता है, पढ़ कर रोमांच होता है। महा-महिम दलाई लामा से उनके स्वर्गिम प्रासाद 'पोटाला' में भेंट का वर्णन विस्मयजनक है। लेखक ने तिब्बत का न केवल सामान्य जन-जीवन चित्रित किया है, बल्कि बौद्ध धर्म का तिब्बत में क्या स्वरूप है, इस पर भी प्रकाश डाला है। साथ-साथ तिब्बत का प्राचीन इतिहास भी दिया है। लामाओं का उस धार्मिक देश में क्या प्रभाव है, यह भी रोचक शैली में दिया गया है।

पुस्तक में तिब्बत की धार्मिक प्रवृत्ति के विषय में बड़ी सूक्ष्म विवेचना की है। वहां धर्म ही सर्वोपरि है, अन्य बातें गौण हैं। दलाई लामा की खोज किस प्रकार की जाती है, उनकी शिक्षा-दीक्षा रहन-सहन कैसा है, यह सब बड़ी मनोरंजक बातें हैं। तिब्बती लोग दलाई लामा को "जीवित बुद्ध" के नाम से पुकारते हैं।

1959 में जब चीनियों ने ल्हासा पर आक्रमण किया, तब वहां की अव्यवस्थित सेना ने चीनी सेना का थोड़ा सा प्रतिरोध किया, अन्त में वे चीन की शक्तिशाली सेना के सामने न टिक सके और ल्हासा की जनता तथा राजपुरुषों ने किस प्रकार दलाई-लामा को तिब्बत से बाहर जाने का अनुरोध किया और उन्हें सकुशल ल्हासा से बाहर भेज दिया। इस कार्य में तिब्बत निवासियों की सूझबूझ और दलाई लामा के प्रति उनकी निष्ठा की झलक मिलती है।

पुस्तक से यात्रा-प्रेमियों को बड़ी सहायता मिलेगी, क्योंकि यात्रा में आने वाली कठिनाइयों का लेखक और उनके पिता ने किस प्रकार सामना किया है। यहां यह स्वीकार करने में कोई सन्देह नहीं है कि पश्चिमी लोग कष्ट-सहिष्णु होते हैं और अपनी इसी भावना के सहारे वे बड़े से बड़े कार्य कर जाते हैं। लेखक ने तिब्बत के बारे में पुरानी तथा नई जानकारी दी है, वह यात्रा प्रेमी तथा इतिहास के जिज्ञासु लोगों के लिए बड़ी लाभप्रद है।

शेष पृष्ठ 44 पर]

कृषि विकास का लाभ जन-जन तक पहुंचे

रमेशदत्त शर्मा

पूरे चौदह महीने पन्तनगर कृषि विश्व-विद्यालय में बिताकर फिर दिल्ली लौट आया हूं। वे चौदह महीने सुबह शाम हरित क्रान्ति की गोद में ही गुजरे। कुलपति के निवास "तराई भवन" से लेकर प्राध्यापकों और विश्वविद्यालय कर्मचारियों के बंगलों तक फैली हुई हरी क्रान्ति। खरीफ में ज्यादातर लोग धान उगाते हैं और रबी में गेहूं। हर बंगले के सामने कोई न कोई फसल लहलहा रही है। सारी सब्जियां लोग गृह वाटिकाओं में लगा रहे हैं। हमने भी तब पहली बार अपने उगाए भुट्टे भूने तथा करेला, तुरई, लौकी, बैंगन, भिण्डी, हरी मिर्च, अरबी, आलू, टमाटर और काशीफल ये सब सब्जियां गृह-वाटिका में उगाईं। अपनी मेहनत से उगाई गई फसल का उपभोग करने का अलग ही आनन्द है। तब पहली बार देखा था कि मक्का की मंजरियों से झरता पीला पराग कैसे सारे पौधों पर छाया रहता है। और यह भी कि कैसे "कंबल कीड़े" की इल्लियां देखते ही देखते पत्तियों और फुनगियों को सफाचट कर जाती हैं। क्वार्टर से यूनिवर्सिटी तक जाते-जाते रास्ते में हर रोज बीसियों इल्लियां मारता था। सड़क के दोनों ओर खेत। अक्सर झुण्ड के झुण्ड इल्लियां एक ओर के खेतों से दूसरी पार जाने की कोशिश में सड़क पार करतीं। पैर रख दो तो पिच्च से दब जातीं, अन्दर से हरा-हरा प्राण-रस निकलता और मुक्ति। कीट विज्ञानी डा० पाठक बताते थे कि वैज्ञानिक क्षेत्रों में "बिहार हेयरी कैटरपिलर" के नाम से प्रसिद्ध यह कीट तराई क्षेत्र में फसलों का बड़ा विकट शत्रु है।

पन्तनगर आने से पहले फसलों के शत्रु-मित्रों के बारे में सुना ही भर था। लेकिन वहां जाकर बहुत तरह के शत्रु-मित्र देखे। आस-पास के इलाके में काफी घूमा फिरा। चारों तरफ हरियाली नजर आती। सब जगह किसान बड़े खुशहाल नजर आते। पर इस हरियाली के पीछे सबसे बड़ी ताकत आदमी की ही नजर आई। नए बीज, नए यन्त्र, नए रसायन, नए उर्वरक और नई कृषि विधियां, सब धरे रह जाएं, जब तक इन्हें अपनाने वाले हाथ न हों। और तराई में ये हाथ ज्यादातर पंजाब के उन साहसी सपूतों के हैं, जो जब तराई में पहुंचे थे, तो न यह हरियाली थी, न पन्तनगर विश्वविद्यालय था। घने जंगलों में खूंखार जानवरों का जोर था। मलेरिया अपने पूरे जौहर पर। दूर-दूर तक निर्जन और वीरान इलाका। सदियों से हल की फाल से अछूती धरती। आज देखो तो वही धरती सच-मुच सोना उगल रही है—हरा सोना।

एक प्रगतिशील किसान

बलिष्ठ देह, रौबीले चेहरे पर हर समय खिली रहने वाली मुसकान और घनी नुकीली मूंछे। तराई विकास निगम के उन्नत बीजों के विज्ञापनों में नजर आने वाला यह चेहरा एडवरटाइजिंग कम्पनी के किसी माडल का नहीं है, पन्तनगर के पास के ही एक गांव के प्रगतिशील किसान का है। उस दिन जब हम पहुंचे थे, तब पके धान के खेत में बाप-बेटा मजदूरों के साथ कटाई करवा रहे थे। सन् 50 के दिसम्बर में आए थे, सेना की नौकरी से। बुलडोजर किराए पर लिया। बन्दूक साथ में रखी और रात देखी न दिन, महीने भर में जंगल साफ करके रख दिया। जमीन इकसार की। मजदूर दिन में तो टिकते, पर रात होते ही मच्छरों के मारे भाग जाते। 8-10 साल में जमीन तैयार हो पाई। शुरू में देसी किस्म का धान बोया। एक एकड़ में मुश्किल से 8-10 मन उपज होती थी। घास और खरपतवार फसल फसल को घेर लेते। कोई समझाने बताने वाला था नहीं।

फिर 1961 में पन्तनगर विश्व-विद्यालय बना। प्रसार सेवा के पंख फैले। अब तो वे आई० आर०-8 बोकर फी एकड़ 62 मन धान काट चुके हैं। इस साल 5 एकड़ में "हंसराज" लगाया है। यही कोई 40-45 मन फी एकड़ पैदावार है, इस धान की। बासमती टाइप-3 भी बोया है। सन् 1965 से उन्हें नई कृषि-विधियों का लाभ मिलने लगा। बिजली पहुंच गई। तीन नलकूप लगवा लिए। कुल 110 एकड़ जमीन है। यानी 25-30 एकड़ के लिए एक नलकूप। एक पम्पिंग सैट है। पानी लगाने के लिए भूमिगत नालियां बना रखी हैं, पक्की। "खुली नाली (बराहा) से पानी की बरबादी बहुत होती है। कच्ची खुली नालियों से दूर तक पानी ले जाना पड़े, तो तीन चौथाई तो बीच में ही सूख जाए। फिर घासपात उग जाए तो जगह-जगह से नाली बन्द। अब दूर से दूर के खेत में 15 मिनट में पानी पहुंच जाता है। शुरू में 9 इंची पाइप डाली है और बाद में 6 इंची।"

हर साल दो अनाज की, तीसरी खरबूज-तरबूज या तरकारियों की फसल लेने वाला यह प्रगतिशील किसान उस जनशक्ति का प्रतीक है, जिसके पसीने ने कृषिक्रान्ति के बीज बोए हैं। यह किसान हर नई जानकारी पाने के लिए उत्सुक रहता है। उसे नए बीजों की चमत्कारी शक्ति का पता है। उसे कीटनाशी रसायनों का इस्तेमाल मालूम है। वह मिट्टी की जांच कराता है, ताकि जरूरत के हिसाब से उर्वरक लगा सके। उसने मजदूरों के लिए पक्के कमरे बनवा दिए हैं, उनमें बिजली के कनेक्शन हैं। ताकि साल भर मजदूर उपलब्ध रहे। बोआई और कटाई के दिनों में 8-8 रुपये की दिहाड़ी पर भी मुश्किल से मजदूर मिलते हैं। नीचे पुआल बिछाया हुआ है। बाद में वह खाद के काम आता है। पक्का बीज गोदाम। अनाज से भरी बोरियों में कीट-निवारण के लिए सल्फामीन की गोलियां। कीटनाशी दवा का धुंआरा। चार बच्चे पढ़ते हैं। पांचवा बच्चा? पन्तनगर विश्वविद्यालय है। मक्का के खेत से लगे घर के द्वार के सामने के अहाते में बारहमासी गुलाब की झाड़ियां, इनका गुलकन्द बहुत अच्छा बनता है।

जो है सो ठीक है

प्यारे पाठक, गुलाबों की महकती क्यारी अब पीछे छूट गई है। यह उसी इलाके के एक अन्य किसान भाई का मकान है। कुछ जंग खाए हुए खेती के औजार हैं। छप्पर डालकर बनाई गई बारादरी है। एक पलंग पड़ा है। एलंग के पास हुक्का रखा है। ट्राइ-साइकिल चलाता हुआ एक बच्चा मेरे पास आकर खड़ा हो गया है। साइकिल तो उसके पास है, पर कपड़े मैल से चीकट हो गए हैं। आधी बनी ईंटों की दीवार से कीचड़ भरा पशुओं का बाड़ा नजर आ रहा है।

बाईं तरफ खेत हैं। पास में ही तरकारियों की क्यारियां हैं, और फिर मक्के के खेत। खरपतवार और फसल में खुला संघर्ष छिड़ा है।

"क्या-क्या बोया है", के जवाब में बड़े भाई के छोटे लड़के ने हमें बताया कि 10-12 एकड़ मक्का बोई है। 5 एकड़ संकर मक्का और 5 एकड़ देसी। 7-8 एकड़ धान है – हंसराज। ईख 15 एकड़ है—कुछ बी-17 है और कुछ 510।

ईख के साथ आलू बोकर मिश्रित फसल उगाई जा सकती है, यह इन किसान भाई को नहीं मालूम। खरपतवार के विनाश के लिए एट्राटैफ कैसी दवा है, इस पर पहले वाले प्रगतिशील किसान आप से ऐसी बहस कर सकते हैं, गोया कल ही किसी स्टेट यूनिवर्सिटी से आए हों, मगर उनके पड़ोसी बन्धुओं ने उसका नाम भी नहीं सुना।

मक्का बोने से पहले आपने "बी एच सी पाउडर" डाला था क्या?

नहीं।

ट्रैक्टर पहले लिया था। बेच दिया। बैल ले लिए। अब फिर ट्रैक्टर लिया है। प्रगतिशील जी हर साल कोई न कोई नई मशीन खरीद लेते हैं।

सिंचाई का इन्तजाम क्या है?

अभी तो पम्पिंग सैट ही है। ट्यूबवैल लगाएंगे। मैंने देखा—इनकी जमीन इकसार नहीं है।

पन्तनगर यूनिवर्सिटी गए हैं?

हां किसान मेले पर जाते हैं।

पिछले किसान मेले में क्या देखा? कोई बात सीखी?

बड़ी देर याद करते रहे। हां, देखते हैं सब देखते हैं।

प्रदर्शन हुआ है, कभी आपके खेत पर।

हां एक बार हुआ था।

धान, आई० आर०-8 पिछली बार बोया था, इस बार नहीं। हंसराज धान की 35 मन पैदावार हो जाती है। पहले धान लगाते ही नहीं थे। जमीन उपजाऊ नहीं थी। मजदूरों के साथ खुद भी लगना पड़ता है बेचारों को। "लेवल" कर रहे हैं, करेंगे, धीरे-धीरे। कितनी पैदावार होती है? बस हो जाती है, जो है सो ठीक है। 25-30 मन संकर मक्का हुई थी एक एकड़ में। ठीक है। कपड़े की दुकान है। दो भाई उस पर बैठते हैं। घर की जरूरत की साग-भाजी लगा लेते हैं। थोड़ी अरहर लगा ली। आलू पानी के बिना नहीं होता।

लाभ कहां-कहां

यह उस औसत भारतीय किसान की तस्वीर है, जो हर नए परिवर्तन का विरोधी माना जाता रहा है। यह तस्वीर अब तेजी से धुंधली पड़ती जा रही है। नई खेती की गूंज जहां-जहां तक पहुंची है, वहां एक नए जागरूक किसान का अभ्युदय हुआ है। खेतीबाड़ी की नई तकनीकों के प्रसार ने किसानों में किस तरह सामाजिक आर्थिक परिवर्तन का सिलसिला शुरू किया है, इस बारे में अनेक गम्भीर अध्ययन किए गए हैं। पन्तनगर के कृषि विश्वविद्यालय ने सन् 1967-68 में जब पिछले साल से 19

प्रतिशत अधिक अनाज पैदा हुआ था, तो उत्तर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के छोटी, मध्यम और बड़ी जोत वाले 403 किसानों में एक सर्वेक्षण किया गया। आधे किसान तराई क्षेत्र से चुने गए और आधे बदायूं जिले से। अध्ययन के लिए चुने गए किसानों में से 97 प्रतिशत ने उन्नत बीज, 98 प्रतिशत ने उर्वरक, 63 प्रतिशत ने सिंचाई के नए साधन और 38 प्रतिशत ने (सिर्फ मध्यम और बड़े फार्मों पर) गहाई के यन्त्र और ट्रैक्टर अपनाए। उनमें से 49 प्रतिशत ने सन् 67-68 में पहली बार उन्नत बीज इस्तेमाल किए थे, 31 प्रतिशत ने अपने खुद के नलकूप लगवाए। कुल मिलाकर किसानों के निजी नलकूप 60 प्रतिशत थे। इस वर्ष कृषि के यन्त्रीकरण में एक तिहाई प्रगति हुई। आम धारणा के विपरीत छोटी जोत वाले किसानों ने भी नई टैक्नोलोजी अपनाई। कम प्रगतिशीलों में से भी 49 प्रतिशत ने अधिक उपजशील बीज अपनाए, 70 प्रतिशत ने उर्वरक, 23 प्रतिशत ने अपने खुद के सिंचाई साधन, और 11 प्रतिशत ने कृषि यन्त्रों में दिलचस्पी ली। कीटनाशी रसायनों का इस्तेमाल प्रगतिशीलों में से चौथाई किसानों ने और अल्प प्रगतिशीलों में से 5 प्रतिशत ने किया।

तराई क्षेत्रों की तुलना में बदायूं में किसानों में कृषि सम्बन्धी तकनीकी जानकारी कम पाई गई। ट्रैक्टर रखने वाले किसानों में से 70 प्रतिशत ने 1967-68 में ही खरीदे थे, और गहाई की मशीनें तो सारी की सारी इसी साल ली गईं। प्रगतिशीलों में से 62 प्रतिशत के पास अपने रेडियो थे और चौथाई से ज्यादा ने बताया कि नई जानकारी प्राप्त करने का यही प्रमुख साधन था। 78 प्रतिशत ने प्रसार सेवाओं, 76 प्रतिशत ने किसानों के खेतों पर किए जाने वाले नई तकनीकों के प्रदर्शनों, 71 प्रतिशत ने संचार माध्यमों, 59 प्रतिशत ने कृषि विश्वविद्यालयों और 55 प्रतिशत ने किसान मेलों का लाभ उठाया।

खेती में मिले मुनाफ का पहला इस्तेमाल तो मकान सुधारने में हुआ। कच्ची दीवारें ढहीं और पक्की खड़ी हुईं। फिर शादी-ब्याह और जेवर कपड़े पर। ट्रांजिस्टर और साइकिल, ट्रैक्टर और मोटर साइकिल पर। ट्रैक्टरों को सवारी के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। रथ या बैलगाड़ी के बजाए ट्रैक्टर के पीछे जुड़ी गाड़ी में चढ़कर गोरी सुसराल को विदा हो रही है। अध्ययन के लिए चुने गए 403 किसानों ने सालभर में कोई 18 लाख रुपये खर्च किए। उपभोक्ताओं के नए स्रोत पर विविध व्यवसायी झपट्टा मारने को आतुर हैं। फिलहाल ज्यादातर हिस्सा कृषि साधनों के विक्रेता ले रहे हैं—खेती के कल पुर्जे बेचने वाले; उन्नत बीज, उर्वरक और रसायन बेचने वाले।

आजादी मिलने के बाद सामुदायिक विकास, साक्षरता, कृषि विकास, सिंचाई साधन, सड़क निर्माण आदि की जो योजनाएं शुरू की गई थीं, वे घिसटते-घिसटते 67-68 में आकर पकीं। 1961 में साधन सम्पन्न जिलों में शुरू किया गया सघन खेती का कार्यक्रम जड़ें पकड़ता गया, अधिक उपजशील बीजों ने ज्यादा से ज्यादा क्षेत्र में धाक जमानी शुरू कर दी, रासायनिक उर्वरकों के कई कारखाने खुले, डीजल इंजन और पम्पिंग सेट और कृषि यन्त्र बनने लगे। भारत में यन्त्र शक्ति का खेती में प्रयोग सबसे पहले मिलिटरी फार्मों पर किया गया। प्रथम विश्व युद्ध से पहले भारत में एक ट्रैक्टर 3,000 रुपये का बिकता था, फिर भी खरीदार नहीं थे। कृषि यन्त्रों की बिक्री के लिए सिर्फ दो तीन कम्पनियां थीं, जो सालभर में 12 से 18 ट्रैक्टर बेच लें, तो अपना सौभाग्य समझती थीं। लड़ाई के बाद तमाम किस्म के ट्रैक्टर भारत में आयात किए गए, पर ईख जैसी अर्थकरी फसलों के खेतिहरों के अलावा ज्यादातर ने घुड़चढ़ी के तौर पर इस्तेमाल किए। अब तो हाल यह है कि हर साल कोई 15,000 ट्रैक्टर तैयार हो रहे हैं और एक ट्रैक्टर लगभग 20,000 रुपये का पड़ता है। फिर भी हर कम्पनी के पास खरीदारों की लम्बी प्रतीक्षा सूचियां पड़ी हैं।

यही परिवर्तन अन्य कृषि साधनों में भी हुआ है। 1951 में 3,500 नलकूप थे, जो 1969 तक 35,000 तक पहुंच गए। तब (1951) बिजली से चलने वाले पम्पों की संख्या 19,700 थी, जो 1969 में 10 लाख से ऊपर पहुंच गई। बिजली 1951 में सिर्फ 3,700 गांवों में थी, 1969 में 70,000 गांवों में झिलमिला उठी। जहां हम 1951 में खेती-बाड़ी में प्रति घण्टा 20 करोड़ किलोवाट बिजली की खपत कर रहे थे, अब 170 करोड़ किलोवाट से ज्यादा बिजली खपा रहे हैं। इसी तरह के आंकड़े रासायनिक उर्वरकों, उन्नत बीजों और कीटनाशकों के बढ़ते हुए उपयोग के बारे में भी जुटाए जा सकते हैं।

खेती के इस बहुमुखी विकास की गहराई का मध्यावधि चुनाव के परिणामों से बढ़िया और क्या प्रमाण मिलेगा? राष्ट्रीय क्षेत्र में आशा का जो वातावरण अन्न उत्पादन में वृद्धि से बना है, उसकी कोई सीमा नहीं है। हमारे मनोबल ऊंचे उठे हैं। कल तक अनेक पश्चिमी देश हमारी भुखमरी का मखौल उड़ाते थे। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका "ईयर बुक" 1967-68 में हमारी गेहूं क्रान्ति का उल्लेख किए बिना, एक पृष्ठ पर भारत के अकालपीड़ित क्षेत्र का चित्र छपा है और सामने के पृष्ठ पर पाकिस्तान की यह खबर कि वहां मैक्सिको के गेहूं का स्थानीय गेहूं के साथ संकरण करने का सफल प्रयास किया जा रहा है।

जो दूर-दराज के देहातों में जागरण की लहर से अजनबी हैं, उन्हें हंसने दें, यह सब देख सुनकर सिर झुकाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि बदलाव की प्रक्रिया शुरू हो गई है। हरित क्रान्ति बड़े किसानों के घरों में बन्द नहीं रहेगी, छोटी जोत भी उसकी गिरफ्त में आ

रही हैं। मौसम का जुआ खेलने वाले बारानी इलाके भी अब सामूहिक प्रयासों के घेरे में हैं। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली के आसपास का इलाका, उत्तर पश्चिमी उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश के उपजाऊ क्षेत्र, तमिलनाडु के कुछ जिले ही नहीं, सारे भारत में इस दशक में हरित क्रान्ति उमड़ने वाली है। विकास की इस बाढ़ को कोई नहीं रोक सकता।

16 जनवरी, 1937 के हरिजन सेवक में गांधी जी ने एक सपना देखा था, आदर्श भारतीय गांव का सपना। "आदर्श भारतीय गांव इस तरह बसाया जाना चाहिए जिससे वह सम्पूर्णतया निरोग रह सके। उसके झोंपड़ों और मकानों में काफी प्रकाश और वायु आ जा सके। वे ऐसी चीजों के बने हों जो पांच मील की सीमा के भीतर उपलब्ध हो सकती हैं। हर मकान के आसपास या आगे पीछे इतना बड़ा आंगन हो, जिसमें गृहस्थ अपने लिए साग-भाजी लगा सकें और अपने पशुओं को रख सकें। गांव की गलियों और रास्तों पर जहां तक हो सके धूल न हो। अपनी जरूरत के अनुसार गांव में कुएं हों, जिससे गांव के सब आदमी पानी भर सकें। सबके लिए प्रार्थना घर या मन्दिर हों, सार्वजनिक सभा वगैरा के लिए एक अलग स्थान हो, गांव की अपनी गोचर भूमि हो, सहकारी ढंग की एक गोशाला हो, ऐसी प्राथमिक और माध्यमिक शालाएं हों, जिनमें औद्योगिक शिक्षा सर्वप्रधान हो।"

हरित क्रान्ति ने देश को इस सपने के बहुत निकट पहुंचाया है। आगे सपना पूरा करने की जिम्मेदारी खुद किसान के अलावा, प्रशासकों, राजनीतिज्ञों' वैज्ञानिकों और प्रत्येक नागरिक पर है। आदर्श और प्रेरणा की सारी शब्दावलि थोथी हो चुकी है, पर फिर भी उनसे जो इस देश के लिए सचमुच कुछ कर गुजरने का संकल्प रखते हैं, बेचैन रहते हैं, कहना चाहता हूं कि अपने सीने में दहकती आग को और प्रज्वलित करो, ताकि तुम तब तक चैन से न बैठ सको, जब तक तुम्हारे घर के पिछवाड़े पड़े कूड़े में से कोई भूखा जूठी पत्तलों से चिपके चावल बटोरता है, जाड़े में ठिठुरते और तेज धूप में झुलसते लोग आसमान की छांह में सोते हैं और दुधमुंहे बच्चे पौष्टिक आहार की जगह मार खाकर सोते हैं।

साहित्य समीक्षा ...(पृष्ठ 40 का शेषांश)

उपन्यास न होने पर भी प्रस्तुत उपन्यास पुस्तक के गुणों से भरपूर है। पुस्तक पढ़ने से जहां तिब्बत के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है वहां इससे मनोरंजन भी पूरा होता है।

अनुवादक श्री रामदत्त पंत ने बड़ी योग्यता से हिन्दी में अनुवाद किया है। अनुवाद होने पर भी पुस्तक मूल पुस्तक जैसी ही मालूम देती है।

सस्ता साहित्य मण्डल के अधिकारी इस प्रकार की मनोरंजक तथा ज्ञानवर्धक पुस्तक प्रकाशित करने के कारण बधाई के पात्र हैं। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

छपाई-सफाई सुन्दर है किन्तु कहीं-कही पर इतने बड़े प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तक में मुद्रण की भूलें खटकती हैं।

सुरेन्द्र प्रसाद अग्रवाल

सामुदायिक विकास को आधुनिक युग की देन माना जाता है, पर यह उद्भावना तो प्राचीन भारतीय समाज के कण-कण में व्याप्त थी। 'सामुदायिक विकास' और 'सामुदायिक परियोजना' शब्द नए अवश्य हैं पर इनके पीछे मूल विचारधारा बहुत पुरानी है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम का लक्ष्य जनता के ही प्रयासों से आत्मनिर्भरता की प्राप्ति है। यही आत्मनिर्भरता की भावना हमारे देश में सदियों से चली आ रही है। जब देश में पश्चिमी शक्तियां आईं तो यह भावना क्षीण पड़ गई। 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमने यह जान लिया कि जब तक देश के लाखों ग्रामीण समुदाय आत्मनिर्भर नहीं हो जाएंगे, तब तक हमारी स्वतन्त्रता सार्थक नहीं होगी और हम विकास की ओर नहीं बढ़ सकेंगे। इसीलिए देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ किया गया था।

इसमें शक नहीं कि इस कार्यक्रम के परिणामस्वरूप देश विकास के पथ पर अग्रसर हुआ है, और उत्पादन में निरन्तर पर्याप्त वृद्धि हुई है, पर इस वृद्धि का लाभ सबको न्यायानुसार नहीं मिला। अब जरूरत इस बात की है कि विकास के लिए जो भी साधन सुविधाएं उपलब्ध की जाएं उनका न्यायानुसार सभी को लाभ मिले। यह सर्वथा गांधीजी की सामाजिक न्याय की धारणा के अनुकूल है।

गांधीजी ने जिस ग्राम स्वराज की कल्पना की थी वह भी मूलतः जनता के अपने प्रयत्नों से ही आ सकता है। गांधीजी ने लिखा है : –

"ग्राम स्वराज की मेरी कल्पना यह है कि ग्राम एक ऐसा पूर्ण गणतन्त्र हो, जो अपनी मुख्य जरूरतों के लिए अपने पड़ोसियों पर भी निर्भर न हो, और फिर भी दूसरी बहुतेरी जरूरतों के लिए एक-दूसरे पर निर्भर हो, जिनमें निर्भरता जरूरी है। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास अपने पशुओं के लिए चरागाह और गांव के वयस्क व्यक्तियों व बच्चों के लिए मन बहलाव और खेलकूद के मैदान होने चाहिए। इसके बाद यदि जमीन और हो तो उसमें वह उपयोगी व्यावसायिक फसल बोएगा, लेकिन उनमें गांजा, तम्बाकू, अफीम आदि की खेती नहीं होनी चाहिए। हर एक गांव का अपना एक नाटकघर, एक पाठशाला और एक सभाभवन होगा। पानी के लिए उनका अपना इन्तजाम होगा—पानी कल होंगे—जिनमें गांव के सभी लोगों को पीने का शुद्ध पानी मिलेगा। कुओं और तालाबों पर गांव का पूरा नियन्त्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दर्जे तक शिक्षा सबके लिए लाजमी होगी। **जहां तक सम्भव हो सकेगा, गांव के सारे काम सहकारिता के आधार पर किए जाएंगे।** आजकल जैसी जात-पांत दिखाई देती है, वैसी जात-पांत या किसी प्रकार की छुआछूत उसमें नहीं होगी। अहिंसा के आधार पर, जिसके सत्याग्रह और सहयोग, ये दो शस्त्र हैं, ग्रामीण समाज का शासन चलेगा। गांव की रक्षा के लिए ग्रामीण रक्षक होंगे जिन्हें लाजमी तौर पर गांव की चौकीदारी का काम करना होगा। इसके लिए गांव के रजिस्टर से बारी-बारी से लोगों का चुनाव किया जाएगा।

लेकिन स्वदेशी-धर्म जानने वाला अपने कुएं में डूब नही जाएगा। जो चीज स्वदेश में नहीं बनती हो या बड़ी तकलीफ से बन सकती हो, वह परदेश के द्वेष के कारण अपने देश में बनाने लग जाएं तो उसमें स्वदेशी धर्म नहीं है। स्वदेशी-धर्म पालने वाला परदेशी का द्वेष कभी नहीं करेगा। इसलिए पूर्ण स्वदेशी में किसी का द्वेष नहीं है। वह संकुचित धर्म नहीं है। वह प्रेम में से—अहिंसा में से—निकला हुआ सुन्दर धर्म है।

—गांधीजी

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1
द्वारा प्रकाशित तथा गंगा प्रिंटिंग प्रैस, सदर बाजार, दिल्ली-6 द्वारा मुद्रित :

Regd. No. D-28

गांव का शासन चलाने के लिए हर साल गांव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जाएगी। निर्धारित योग्यता वाले ग्रामीण बालिग स्त्री-पुरुषों को इस पंचायत को चुनने का अधिकार होगा। इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार होंगे। चूंकि इस ग्राम स्वराज में आज के प्रचलित अर्थ में सजा देने की कोई प्रणाली नहीं होगी, इसलिए यह पंचायत अपने एक साल के कार्यालय में धारा सभा, न्यायसभा और कार्यपालिका का काम संयुक्त रूप से करेगी। .."

"मुझे मशीन से नहीं, बल्कि मशीन की 'खब्त' से चिढ़ है। यह खब्त तथाकथित श्रम बचाने वाली मशीनों की है। लोग श्रम बचाते चले जाते हैं, यहां तक कि हजारों लोग बेरोजगार होकर मारे-मारे फिरते हैं और भूख से मर जाते हैं। मैं मानव जाति के एक छोटे से अंश का नहीं, बल्कि सभी मनुष्यों का समय और श्रम बचाना चाहता हूं। मैं धन को एकत्र करना चाहता हूं, लेकिन चन्द लोगों के हाथों में नहीं बल्कि सभी लोगों के हाथों में। आज मशीन का इतना ही उपयोग है कि उसकी सहायता से

सत्ता में जब तक सब लोगों का हिस्सा नहीं होता तब तक लोकतन्त्र की स्थापना एक असम्भव बात है। लेकिन लोकतन्त्र को पतित होकर भीड़तन्त्र में परिणत नहीं होने देना चाहिए। एक अन्त्यज तथा एक श्रमिक का भी, जो आपको अपनी रोजी कमाने में मदद देता है, स्वराज में हिस्सा होगा। परन्तु आपको उनके सम्पर्क में आना होगा, उनके झोंपड़ों को देखना होगा जिनमें वे जानवरों की तरह रहते हैं। मानवता के इस अंग को देखभाल करना आपका कर्त्तव्य है। उनके जीवन को बनाना या बिगाड़ना आपके हाथों में है।

गांधीजी सदा यही कहते थे कि भारत गांवों में बसता है और ग्रामीण विकास ही वास्तव में भारत का विकास हो सकता है। वे शहरों की अपेक्षा गांवों के उत्थान के ही हामी थे।

गांधीजी ने हमेशा मनुष्य की जगह मशीन के प्रयोग का विरोध किया था। वे मुख्यत: मशीन की उपयोगिता को मानते थे और उसे बेकार नहीं समझते थे, पर वे इस बात के हामी नहीं थे कि मशीनें लोगों का शोषण करके भी इस्तेमाल की जाएं। उन्होंने कहा है :—

थोड़े से लोग, करोड़ों लोगों का शोषण करते हैं। इसके पीछे लोगों की मेहनत बचाने की नेक भावना नहीं बल्कि लोभ की भावना काम कर रही है। यही है वह व्यवस्था जिसके विरुद्ध मैं अपनी पूरी शक्ति से संघर्ष कर रहा हूं।"

गांधीजी की दृष्टि में गांवों का एक महान अस्तित्व था और वे प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति और विश्वास को ही सच्ची सफलता मानते थे। यदि हम पूर्णतया गांधीजी के आदर्शों का अनुसरण करने में सफल हो जाएं तो गांवों में गरीबी और बेरोजगारी नहीं रहेगी और वे पूर्ण रूप से विकसित और स्वतन्त्र हो जाएंगे।

हर वक्त अगर आप दिमाग में यह तसवीर रखें कि हम किधर जा रहे हैं, कि कैसे एक समाज समाजवादी उसूलों पर बनेगा जिसमें सभी को बराबर का अधिकार मिले, चाहे वे गांव में रहें या शहर में रहें, सभी को बराबर की तरक्की का मौका मिले, और उसके लिए हम काम करें और मुल्क की दौलत अपने परिश्रम से, अपनी मेहनत से बढ़ाएं और उसको देखें कि ठीक बंटती है, या नहीं खाली कुछ जेबों में अटक नहीं जाती—तो यकीनन हम इस मंजिल पर भी पहुंचेंगे।

प० जवाहर लाल नेहरू